www.aaryasamajmandir.com

७

आर्याभिविनयः

प्राकृतभाषानुवादसहितः

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना

निर्मितः

सर्वलोकहिताय

!! ओ३म् !!

अथार्याभिविनयोपक्रमणिका-विचारः

सर्वात्मा सच्चिदानन्दोऽनन्तो यो न्यायकृच्छुचिः।
भूयात्तमां सहायो नो दयालुः सर्वशक्तिमान्।।१।।
चक्षूरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे चैत्रे मासि सिते दले।
दशम्यां गुरुवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया।।२।।
[दयाया आनन्दो विलसति परः स्वात्मविदितः,
सरस्वत्यस्याग्रे निवसति मुदा सत्यनिलया।
इयं ख्यातिर्यस्य प्रलसितगुणा वेदशरणा-
स्त्यनेनायं ग्रन्थो रचित इति बोधव्यमनघाः।।३।।]
बहुभिः प्रार्थितः सम्यग् ग्रन्थारम्भः कृतोऽधुना।
हिताय सर्वलोकानां ज्ञानाय परमात्मनः ।।४।।
वेदस्य मूलमन्त्राणां व्याख्यानं लोकभाषया।
क्रियते सुखबोधाय ब्रह्मज्ञानाय सम्प्रति ।।५।।
स्तुत्युपासनयोः सम्यक् प्रार्थनायाश्च वर्णितः।
विषयो वेदमन्त्रैश्च सर्वेषां सुखवर्द्धनः ।।६।।
विमलं सुखदं सततं सुहितं जगति प्रततं तदु वेदगतम्।
मनसि प्रकटं यदि यस्य सुखी स नरोस्ति सदेश्वरभागधिकः ।।७।।
विशेषभागीह वृणोति यो हितं नरः परात्मानमतीव मानतः ।
अशेषदुःखात्तु विमुच्य विद्यया स मोक्षमाप्नोति न कामकामुकः।।८।।

व्याख्यान-जो परमात्मा सब का आत्मा, सत्-चित्-आनन्दस्वरूप, अनन्त, अज, न्याय करनेवाला, निर्मल, सदा पवित्र, दयालु, सब सामर्थ्यवाला हमारा इष्टदेव है, वह हमको सहाय नित्य देवे। जिससे महाकठिन काम भी हम लोग सहज से करने को समर्थ हों। हे कृपानिधे! यह काम हमारा आप ही सिद्ध करनेवाले हो। हम आशा

www.aaryasamajmandir.com

करते हैं कि आप हमारी कामना सिद्ध करेंगे ।।१।।

संवत् १९३२ मिति चैत्र सुदी १० गुरुवार के दिन इस ग्रन्थ का आरम्भ हमने किया [है] ।।२।।

दयानन्द सरस्वती स्वामी का नाम इस (उक्त तीसरे) श्लोक से निकलता है।।३।।

बहुत सज्जन लोग सब के हितकारक, धर्मात्मा, विद्वान्, विचारशील जनों ने मुझसे प्रीति से कहा। तब सब लोगों के हित और यथार्थ परमेश्वर का ज्ञान तथा प्रेम भक्ति यथावत् हो, इसलिए इस ग्रन्थ का आरम्भ किया है।।४।।

इस ग्रन्थ में केवल चार वेदों के और ब्राह्मण ग्रन्थों के मूल मन्त्रों का प्राकृत भाषा में व्याख्यान किया है। जिससे सब लोगों को सुख से बोध हो, और ब्रह्म का ज्ञान यथार्थ हो ।।५।।

इस ग्रन्थ में परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना तथा धर्म्मादि विषय वर्णन किया है, परन्तु मूलसंहितामन्त्र और ब्राह्मण-प्रमाण से ही। सब को सुख बढ़ानेवाला यह विषय है।।६।।

जो ब्रह्म विमल, सुखकारक, पूर्णकाम, तृप्त, जगत् में व्याप्त, वही सब वेदों से प्राप्य है। जिसके मन में इस ब्रह्म की प्रकटता (यथार्थ विज्ञान) है, वही मनुष्य ईश्वर के आनन्द का भागी है। और वही सबसे सदैव अधिक सुखी है। ऐसे मनुष्य को धन्य है।।७।।

जो नर इस संसार में अत्यन्त प्रेम, धर्मात्मा, विद्या, सत्सङ्ग, सुविचारता, निर्वैरता, जितेन्द्रियता, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से परमात्मा का स्वीकार (आश्रय) करता है, वही जन अतीव भाग्यशाली है। क्योंकि वह मनुष्य यथार्थ सत्यविद्या से सम्पूर्ण दुःख से छूटके परमानन्द परमात्मा का नित्य सङ्गरूप जो मोक्ष उसको प्राप्त होता है फिर कभी जन्म-मरण आदि दुःख-सागर को प्राप्त नहीं होता। परन्तु जो विषयलम्पट, विचाररहित, विद्या-धर्म-जितेन्द्रियता-सत्सङ्ग-रहित, छल-कपट-अभिमान-दुराग्रहादिदुष्टायुक्त है, सो वह मोक्षसुख को प्राप्त नहीं होता, क्योंकि वह ईश्वरभक्ति से विमुख है। और वह मनुष्य जन्म-मरण ज्वरादि-पीड़ाओं से पीड़ित होके सदा दुःखसागर में ही पड़ा रहता है ।।८।।

इससे सब मुनष्यों को उचित है कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा से विरुद्ध कभी नहीं हों। किन्तु ईश्वर तथा उसकी आज्ञा में तत्पर होके इस लोक (संसार-व्यवहार) और परलोक (जो पूर्वोक्त मोक्ष) इनकी सिद्धि यथावत् करें। यही सब मनुष्यों की कृतकृत्यता है।

इस 'आर्याभिविनय' ग्रन्थ में मुख्यता से वेदमन्त्रों का परमेश्वर-सम्बन्धी एक ही अर्थ संक्षेप से किया गया है। दोनों अर्थ करने से ग्रन्थ बहुत बढ़ जाता। इससे व्यवहार-विद्यासम्बन्धी अर्थ नहीं किया गया। परन्तु वेदों के भाष्य में यथावत् विस्तारपूर्वक परमार्थ और व्यवहारार्थ ये दोनों अर्थ सप्रमाण किये जाएँगे।

जैसे-"तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुः०" इत्यादि य० संहिता-प्रमाण। "इन्द्रं मित्रं वरुणम्०" इत्यादि ऋ० सं० प्रमाण। "बृहस्पतिर्वै ब्रह्म," "गणपतिर्वै ब्रह्म", "प्राणो वै ब्रह्म", "आपो वै ब्रह्म", "ब्रह्म ह्यग्निः" इत्यादि शतपथ ऐतरेय ब्राह्मणादि प्रमाण, और "महान्तमेवात्मान" इत्यादि निरुक्तादि प्रमाणों से परब्रह्म ही अर्थ लिया जाता है।

तथा "मुखादग्निरजायत" इत्यादि य० सं० प्रमाण। "वायोरग्निः" इत्यादि ब्राह्मण प्रमाण; तथा "अग्निरग्रणीर्भवतीति इत्यादि निरुक्त-प्रमाणों से यह प्रत्यक्ष जो रूपगुणवालादाह-प्रकाशयुक्त भौतिक अग्नि, वह लिया जाता है, इत्यादि दृढ़ प्रमाण, युक्ति और प्रत्यक्ष व्यवहार से दोनों अर्थ वेदभाष्य में लिखे जायेंगे। जिससे सायणादिकृत-भाष्य-दोष और उनके अनुसार अग्रेंजीकृतार्थदोषरूप वेदों के कलङ्क निवृत्त हो जायेंगे। और वेदों के सत्यार्थ का प्रकाश होने से, वेदों का महत्त्व, तथा वेदों का अनन्तार्थ जानने से मनुष्यों को महालाभ, और वेदों में यथावत् सब की प्रीति होगी।

इस ग्रन्थ से तो केवल मनुष्यों को ईश्वर का स्वरूपज्ञान और भक्ति, धर्मनिष्ठा, व्यवहारशुद्धि इत्यादि प्रयोजन सिद्ध होंगे, जिससे नास्तिक और पाखण्डमतादि अधर्म में मनुष्य लोग न फसें। किञ्च सब प्रकार के मनुष्य अत्युत्तम पर हों, और सर्वशक्तिमान् जगदीशवर की कृपा सब मनुष्यों पर हो। जिससे सब मनुष्य दुष्टता को छोड़के श्रेष्ठता को स्वीकार करें। यह मेरी परमात्मा से प्रार्थना है, सो परमेश्वर अवश्य पूरी करेगा।

।। इत्युपक्रमणिका संक्षेपतः सम्पूर्ण ।।

!! ओ३म् !!

तत्सत्परब्रह्मणे नमः

अथार्याभिविनय-प्रारम्भः

[प्रथमः प्रकाशः]

ओं शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुक्रमः ॥१॥

-ऋ० अ० १। अ० ६। व १८। मं० ४॥*

व्याख्यान-हे सच्चिदानन्दान्तस्वरूप! हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव! हे अद्वितीयानुपमजगदादिकारण! हे अज निराकार सर्वशक्तिमन्, न्यायकारिन्! हे जगदीश सर्वजगदुत्पादकाधार! हे सनातन सर्वमङ्गलमय सर्वस्वामिन्! हे करुणाकरास्मत्पितः परमसहायक! हे सर्वानन्दप्रद सकलदुःखविनाशक! हे अविद्यान्धकारनिर्मूलक विद्यार्कप्रकाशक! हे परमैश्वर्यदायक साम्राज्यप्रसारक! हे अधमोद्धारक, पतितपावन, मान्यप्रद! हे विश्वविनोदक, विनयविधिप्रद विश्वासविलासक ! हे निरञ्जन, नायक, शर्मद, नरेश, निर्विकार! हे सर्वान्तर्यामिन्, सदुपदेशक, मोक्षप्रद! हे सत्यगुणाकर, निर्मल, निरीह, निरामय, निरुपद्रव, दीनदयाकर, परमसुखदायक! हे दारिद्र्यविनाशक, निर्वैरविधायक, सुनीतिवर्धक! हे प्रीतिसाधक, राज्यविधायक, शत्रुविनाशक! हे सर्वबलदायक, निर्बलपालक धर्मसुप्रापक! हे अर्थसुसाधक, सुकामवर्द्धक, ज्ञानप्रद! हे सन्ततिपालक, धर्मसुशिक्षक, रोगविनाशक! हे पुरुषार्थप्रापक, दुर्गुणनाशक, सिद्धिप्रद! हे सज्जनसुखद, दुष्टसुताड़न गर्वकुक्रोधकुलोभविदारक! हे परमेशपरेश परमात्मन् परब्रह्मन्! हे जगदानन्दक परमेश्वर व्यापक सूक्ष्माच्छेद्य! हे अजरामृताभयनिर्बन्धानादे! हे अप्रतिमप्रभाव, निर्गुणातुल, विश्वाद्य विश्ववन्द्य विद्वद्विलासकत्याद्यनन्तविशेषण-वाच्य! हे मङ्गलप्रदेश्वर ! आप [(शं नो मित्रः)] सर्वथा सबके निश्चित मित्र हो, हमको सत्यसुखदायक सर्वदा हो। [(शं वरुण)] हे सर्वोत्कृष्ट स्वीकरणीय वरेश्वर! आप वरुण अर्थात् सबसे परमोत्तम हो, आप हमको परमसुखदायक हो। [(शं नो भवत्वर्यमा)] हे पक्षपातरहित, धर्मन्यायकारिन्! आप अर्यमा [(यमराज)] हो, हमारे

* यह संख्या इस भाग में सर्वत्र यथावत् जान लेना, क्योंकि आगे केवल अंक संख्या लिखी जायेगी ।१।६।१।८।४ इनसे अष्टक, अध्याय, वर्ग, मंत्र जान लेना।

लिये न्याययुक्त सुख देनेवाले आप ही हो। [(शं नः इन्द्रः)] हे परमैश्वर्य्यवन् इन्द्र ईश्वर! आप हमको परमैश्वर्ययुक्त शीघ्र स्थिर सुख दीजिये। [(बृहस्पतिः)] हे महाविद्य वाचोऽधिपते बृहस्पते, परमात्मन्! हम लोगों को (बृहत्) सबसे बड़े सुख को देनेवाले आप ही हो। [(शं नः विष्णुः उरुक्रमः)] हे सर्वव्यापक, अनन्तपराक्रमेश्वर, विष्णो! आप हमको अनन्त सुख देओ। जो कुछ माँगेंगे सो आपसे ही हम लोग माँगेंगे, सब सुखों का देनेवाला आपके विना कोई नहीं है। सर्वथा हम लोगों को आपका ही आश्रय है, अन्य किसी का नहीं, क्योंकि सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयामय सबसे बड़े पिता को छोड़कर नीच का आश्रय हम लोग कभी न करेंगें। आपका तो स्वभाव ही है कि अङ्गीकृत को कभी नहीं छोड़ते। सो आप सदैव हम को सुख देंगे, यह हम लोगों को दृढ़ निश्चय है ।।१।।

स्तुतिविषयः

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥२॥ –ऋ०१। १। १। १

व्याख्यान–हे वन्द्येश्वराग्ने! [(अग्निमीळे)] आप ज्ञानस्वरूप हो, आप की मैं स्तुति करता हूँ। हे सर्वहितोपकारक! आप (पुरोहितम्) सब जगत् के हितसाधक हो। [(यज्ञस्य देवम्)] हे यज्ञस्य! [आप] सब मनुष्यों के पूज्यतम और ज्ञानयज्ञादि के लिए कमनीयतम हो। (ऋत्विजम्) सब ऋतु वसन्त आदि के रचक, अर्थात् जिस समय जैसा सुख चाहिये, उस समय वैसे सुख के सम्पादक आप ही हो। (होतारम्) सब जगत् को समस्त योग और क्षेम के देनेवाले हो, और प्रलय–समय में कारण में सब जगत् का होम करनेवाले हो। (रत्नधातमम्) रत्न अर्थात् रमणीय पृथिव्यादिकों के धारण रचन करनेवाले, तथा अपने सेवकों के लिए रत्नों के धारण करनेवाले एक आप ही हो। हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन्! इसलिए मैं वारंम्वार आप की स्तुति करता हूँ, इसको आप स्वीकार कीजिए। जिससे हम लोग आप के कृपापात्र होके सदैव आनन्द में रहें ।

सब मनुष्यों के प्रति परमात्मा का यह उपदेश है "हे मनुष्यो! तुम लोग इस प्रकार से मेरी स्तुति प्रार्थना और उपासनादि करो। जैसे पिता वा गुरु अपने पुत्र वा शिष्य को शिक्षा करता है कि तुम पिता वा गुरु के विषय में इस प्रकार से स्तुति आदि

का वर्त्तमान करना, वैसे सबके पिता और परमगुरु ईश्वर ने हम को कृपा से सब व्यवहार और विद्यादि पदार्थों का उपदेश किया है। जिससे हमको व्यवहार-ज्ञान और परमार्थज्ञान होने से अत्यन्त सुख हो। जैसे सब का आदिकारण ईश्वर है, वैसे परमविद्या वेद का भी आदि कारण ईश्वर है।।२।।

प्रार्थना-विषयः

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे।
यशसं वीरवत्तमम् ।।३।। -ऋ०१। १। १। ३

व्याख्यान-[(अग्निना)] हे महादातः ईश्वराग्ने! आपकी कृपा से स्तुति करनेवाला मनुष्य (रयिम्) उस विद्यादि धन तथा सुवर्णादि धन को [(अश्नवत्)] अवश्य प्राप्त होता है, कि जो धन [(दिवे दिवे)] प्रतिदिन (पोषमेव) महापुष्टि करने [(यशसम्)] और सत्कीर्ति को बढ़ानेवाला, तथा [(वीरवत्तमम्)] जिससे विद्या, शौर्य, धैर्य, चातुर्य, बल-पराक्रम और दृढ़ाङ्ग धर्मात्मा, न्याययुक्त, अत्यन्त वीर पुरुष प्राप्त हों, वैसे सुवर्ण रत्नादि तथा चक्रवर्त्ती राज्य और विज्ञानस्वरूप धन को प्राप्त होऊँ। तथा आपकी कृपा से सदैव धर्मात्मा होके अत्यन्त सुखी रहूँ ।।३।।

स्तुति-विषयः

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषीभिरीड्यो नूतनैरुत।
स देवाँ एह वक्षति ।।४।। -ऋ० १। १। १। २

व्याख्यान-[(अग्निः)] हे सब मनुष्यों के स्तुति करने योग्य ईश्वराग्ने! [(पूर्वेभिः)] विद्या पढ़े हुए प्राचीन (ऋषिभिः) मन्त्रार्थ देखनेवाले विद्वान् तथा (नूतनैः) वेदार्थ पढ़नेवाले नवीन ब्रह्मचारियों से (ईडयः) स्तुति के योग्य, (उत) और (नूतनैः) जो हम लोग (मनुष्य) विद्वान् वा मूर्ख हैं, उन से भी अवश्य आप ही स्तुति के योग्य हो। [(स ..... वक्षति)] सो स्तुति को प्राप्त हुए आप हमारे और सब संसार के सुख के लिए दिव्यगुण अर्थात् विद्यादि को कृपा से प्राप्त करो, आप ही सब के इष्टदेव हो।।४।।

स्तुति-विषयः

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।
देवो देवेभिरा गमत् ।।५।। -ऋ० १। १। १। ५

व्यख्यान-(कविः) हे सर्वदृक्-सब को देखनेवाले! (क्रतुः) सब जगत् के जनक, (सत्यः) अविनाशी अर्थात् कभी जिसका नाश नहीं होता, (चित्रश्रवस्तमः) आश्चर्यश्रवणादि, आश्चर्यगुण, आश्चर्यशक्ति, आश्चर्यस्वरूप और अत्यन्त उत्तम आप हो। जिन आपके तुल्य वा आप से बड़ा कोई नहीं है। [(देवः)] हे जगदीश! (देवेभिः) दिव्य गुणों के सह वर्त्तमान हमारे हृदय में आप प्रकट हों, सब जगत् में भी प्रकाशित हों। जिससे हम और हमारा राज्य दिव्यगुणयुक्त हो। वह राज्य आप का ही है, हम तो केवल आप के पुत्र तथा भृत्यवत् हैं।।५।।

प्रार्थना-विषयः

यद॑ङ्ग दा॒शुषे॒ त्वमग्ने॑ भ॒द्रं क॑रि॒ष्यसि॑।
तवेत्तत्स॒त्यम॑ङ्गिरः ॥६॥ -ऋ० १। १। २। १

व्यख्यान- हे (अङ्ग) मित्र! (दाशुषे) जो आप को आत्मादि दान करता है, उसको [आप] (भद्रम्) व्यावहारिक और पारमार्थिक सुख [(करिष्यसि)] अवश्य देते हो। हे (अङ्गिरः) प्राणप्रिय! [(तवेत्तसत्यम्)] यह आप का सत्यव्रत है कि स्वभक्तों को परमानन्द देना। यही आप का स्वभाव हम को अत्यन्त सुखकारक है। आप मुझको ऐहिक और पारमार्थिक इन दोनों सुखों का दान शीघ्र दीजिए। जिस से सब दुःख दूर हों, हम को सदा सुख ही रहे ।।६।।

स्तुति-विषयः

वाय॒वा या॑हि दर्श॒तेमे सोमा॒ अर॑कृताः।
तेषां॑ पाहि श्रु॒धी हव॑म्॥७॥ -ऋ० १। १। ३। १

व्याख्यान- [(वायवा याहि दर्शत)] हे अनन्तबल परेश वायो दर्शनीय! आप अपनी कृपा से ही हमको प्राप्त हों। (इमे सोमाः) हम लोगों ने अपनी अल्पशक्ति से सोम (सोमवल्यादि) ओषधियों का उत्तम रस सम्पादन किया है। और जो कुछ भी हमारे श्रेष्ठ पदार्थ हैं, वे आपके लिए ही (अरंकृताः) अलंकृत अर्थात् उत्तम रीति से हमने बनाये हैं। वे सब आपके समर्पण किये गये हैं, [(तेषां पाहि)] उन को आप स्वीकार करो (सर्वात्मा से पान करो)। (श्रुधि हवम्) हम दीनों की पुकार सुनकर जैसे पिता को पुत्र छोटी चीज समर्पण करता है, उस पर पिता अत्यन्त प्रसन्न होता है, वैसे आप हम पर प्रसन्न होओ।।७।।

प्रार्थना-विषयः

पा॒व॒का न॒ः सर॑स्वती वाजे॑भिर्वा॒जिनी॑वती ।
य॒ज्ञं व॑ष्टु धि॒याव॑सुः॥८॥ —ऋ० १।१।६।४

व्याख्यान-हे वाक्पते! सर्वविद्यामय! [(नः)] हमको आप की कृपा से (सरस्वती) सर्वशास्त्र-विज्ञानयुक्त वाणी प्राप्त हो। (वाजेभिः) तथा उत्कृष्ट अन्नादि के साथ वर्त्तमान (वाजिनीवती) सर्वोत्तम क्रिया-विज्ञानयुक्त, (पावका) पवित्रस्वरूप और पवित्र करनेवाली, सदैव सत्यभाषणमय मङ्गलकारक वाणी आपकी प्रेरणा से प्राप्त होके आपके अनुग्रह से (धियावसुः) परमोत्तम बुद्धि के साथ वर्त्तमान निधिस्वरूप यह वाणी (यज्ञं वष्टु) सर्वशास्त्रबोध और पूजनीयतम आप के विज्ञान की कामनायुक्त सदैव हो। जिस से हमारी सब मूर्खता नष्ट हो, और हम महापाण्डित्ययुक्त हों॥८॥

स्तुति-विषयः

पु॒रू॒तमं॑ पु॒रू॒णामीशा॑नं॒ वार्या॑णाम्।
इन्द्रं॒ सोमे॒ सचा॑ सु॒ते॥९॥ —ऋ० १।१।९।२

व्याख्यान- हे परात्पर परमात्मन्! आप (पुरूतमम्) अत्यन्तोत्तम और सर्वशत्रुविनाशक हो। तथा [(पुरूणाम्)] बहुविध जगत् के पदार्थों के (ईशानम्) स्वामी और उत्पादक हो। (वार्याणाम्) वर, वरणीय, परमानन्द मोक्षादि पदार्थों के भी ईशान हो। और (सोमे) उत्पत्तिस्थान संसार आप से [(सुते)] उत्पन्न होने से [(सचा)] प्रीतिपूर्वक [हम] (इन्द्रम्) परमैश्वरर्यवान् आपको (अभिप्रगायत*) हृदय में अत्यन्त प्रेम से गावें, यथावत् स्तुति करें। जिससे आपकी कृपा से हम लोगों का भी परमैश्वर्य बढ़ता जाये, और [हम] परमानन्द को प्राप्त हों॥९॥

प्रार्थना-विषयः

तमीशा॑नं॒ जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पतिं॑ धियंजि॒न्वमव॑से हूमहे व॒यम्।
पू॒षा नो॒ यथा॒ वेद॑सा॒मस॑द्वृ॒धे र॑क्षि॒ता पा॒युरद॑ब्धः स्व॒स्तये॑॥१०॥

—ऋ० १। ६। १५। ५

व्याख्यान-हे सर्वाधिस्वामिन्! आप ही [(जगतः तस्थुषः)] चर और अचर

* इस शब्द की अनुवृत्ति १।१।९।१ से आई है।

जगत् के (ईशानम्) रचनेवाले हो। (धियञ्जिन्वम्) सर्वविद्यामय, विज्ञानस्वरूप बुद्धि को प्रकाशित करनेवाले, सब को तृप्त करनेवाले प्रीणनीयस्वरूव (पूषा) सब के पोषक हो। उन आपका हम (नः अवसे) अपनी रक्षा के लिए (हूमहे) आह्वान करते हैं। (यथा) जिस प्रकार से आप हमारे विद्यादि धनों की वृद्धि वा रक्षा के लिए (अदब्धः रक्षिता) निरालस रक्षा करने में तत्पर हो, वैसे ही कृपा करके आप (स्वस्तये) हमारी स्वस्थता के लिए (पायुः) निरन्तर रक्षक (विनाशनिवारक) हो। आपसे पालित हम लोग सदैव उत्तम कामों में उन्नति और आनन्द को प्राप्त हों।।१०।।

स्तुति-विषयः

अतो॑ दे॒वा अ॑वन्तु नो॒ यतो॒ विष्णु॑र्विचक्र॒मे।
पृ॒थि॒व्याः स॒प्त धाम॑भिः।।११।। –ऋ० १। २। ७। १

व्याख्यान–हे (देवाः) विद्वानो! (विष्णुः) सर्वत्र व्यापक परमेश्वर ने सब जीवों को पाप तथा पुण्य का फल भोगने और सब पदार्थों के स्थित होने के लिए (पृथिव्याः) पृथिवी से लेके (सप्त) सप्तविधि (धामभिः) धाम अर्थात् ऊँचे-नीचे सात प्रकार के लोकों को बनाया, तथा गायत्र्यादि सात छन्दों से विस्तृत विद्यायुक्त वेद को भी बनाया। उन लोकों के साथ वर्त्तमान व्यापक ईश्वर ने (यतः) जिस सामर्थ्य से सब लोकों को रचा है, (अतः)–सामर्थात्–उस सामर्थ्य से हम लोगों की रक्षा करे। हे विद्वानो! तुम लोग भी उसी विष्णु के उपदेश से [(नः अवन्तु)] हमारी रक्षा करो। कैसा है वह विष्णु? जिसने इस सब जगत् को (विचक्रमे) विविध प्रकार से रचा है। उसकी नित्य भक्ति करो।।११।।

प्रार्थना-विषयः

पा॒हि नो॑ अग्ने र॒क्षसः॑ पा॒हि धूर्त्तेररा॑व्णः ।
पा॒हि रीष॑त उ॒त वा॒ जिघां॑सतो बृह॑द्भानो॒ यवि॑ष्ठ्य।।१२।।

–ऋ० १। ३। १०। ५

व्याख्यान–हे [(अग्ने)] सर्वशत्रुदाहकाग्ने परमेश्वर ! [(रक्षस)] राक्षस, हिंसाशील, दुष्टस्वभाव देहधारियों से (नः) हमारी (पाहि) पालना और रक्षा करो। (धूर्त्तेरराव्णः) कृपण जो धूर्त्त उस मनुष्य से भी हमारी (पाहि) रक्षा करो। [(रीषत उत वा जिघांसतः)] जो हमको मारने लगे, तथा जो मारने की इच्छा करता है,

[(बृहद्भानो यविष्ठ्य)] हे महातेज बलवत्तम! उन सब से हमारी (पाहि) रक्षा करो।।१२।।

स्तुति-विषयः

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम्।।१३।।

-ऋ० १। ४। १४। २

व्याख्यान-हे परमैश्वर्यवन् परात्मन्! [(रजसः व्योमनः पारे)] आकाश लोक के पार में तथा भीतर [(स्वभूत्योजा धृषन्मनः)] अपने ऐश्वर्य और बल से विराजमान होके दुष्टों के मन का धर्षण-तिरस्कार करते हुए सब जगत् तथा विशेष हम लोगों के (अवसे) सम्यक् रक्षण के लिये (त्वम्) आप सावधान हो रहे हो। इससे हम निर्भय होके आनन्द कर रहे हैं। किञ्च (दिवम्) परमाकाश (भूमिम्) भूमि तथा (स्वः) सुखविशेष मध्यस्थ लोक इन सबों को (ओजसः) अपने सामर्थ्य से ही रचके यथावत् धारण कर रहे हो। (परिभूः एषि) सब के ऊपर वर्त्तमान और सब को प्राप्त हो रहे हो। (आ दिवम्) द्योतनात्मक सूर्यादि लोक, (अपः) अन्तरिक्षलोक और जल इन सब के (प्रतिमानम्)-परिमाणकर्त्ता आप ही हो, तथा आप अपरिमेय हो। कृपा करके हमको अपना तथा सृष्टि का विज्ञान दीजिए।।१३।।

प्रार्थना-विषयः

वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन।।१४।।

-ऋ० १। ४। १०। ३

व्याख्यान-हे यथायोग्य सबको जाननेवाले ईश्वर! आप (आर्यान्) विद्याधर्मादि-उत्कृष्ट-स्वभावाचरणयुक्त आर्यों को [(वि जानीहि)] जानो। (ये च दस्यवः) और जो नास्तिक, डाकू, चोर, विश्वासघाती, मूर्ख, विषयलम्पट, हिंसादिदोषयुक्त, उत्तम कर्म्म में विघ्न करनेवाले, स्वार्थी, स्वार्थसाधन में तत्पर, वेदविद्याविरोधी, अनार्य मनुष्य (बर्हिष्मते) सर्वोपकारक यज्ञ के ध्वंसक हैं, इन सब दुष्टों को आप (रन्धय) (समूलान् विनाशय) मूल-सहित नष्ट कर दीजिए। और (शासदव्रतान्) ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ-संन्यासादि-धर्मानुष्ठानव्रतरहित,

वेदमार्गोच्छेदक अनाचारियों को यथायोग्य शासन करो (शीघ्र उन पर दण्ड निपातन करो)। जिससे वे भी शिक्षायुक्त होके शिष्ट हों, अथवा उनका प्राणान्त हो जाय, किंवा हमारे वश में ही रहें। (शाकी) तथा [आप ही] जीव को परम शक्तियुक्त शक्ति देने और उत्तम कामों में [चोदिता] प्रेरणा करनेवाले हो। आप हमारे दुष्ट कामों से निरोधक हो। मैं भी (सधमादेषु) उत्कृष्ट स्थानों में निवास करता हुआ (विश्वेत्ता ते) तुम्हारी आज्ञानुकूल सब उत्तम कर्मों की (चाकन) कामना करता हूँ। सो आप पूरी करें ।।१४।।

स्तुति-विषयः

न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक्।।१५।।

–ऋ० १। ४। १४। ४

व्याख्यान-हे परमैश्वर्ययुक्तश्वर! आप इन्द्र हो। हे मनुष्यो! [(न यस्य द्यावापृथिवी अन्तमानशुः)] जिस परमात्मा का अन्त-'इतना यह है' न हो। उसकी व्याप्ति का परिच्छेद (इयत्ता) परिमाण कोई नहीं कर सकता। तथा दिव अर्थात् सूर्यादिलोक, सर्वोपरि आकाश तथा पृथ्वी मध्य निकृष्ट लोक ये कोई उसके आदि अन्त को नहीं पाते। क्योंकि (अनुव्यचः) वह सबके बीच में अनुस्यूत (परिपूर्ण) हो रहा है। तथा (न सिन्धवः) अन्तरिक्ष में जो दिव्य जल तथा सब लोक सो भी अन्त नहीं पा सकते। (नोत स्ववृष्टिं मदे) वृष्टि-प्रहार से युद्ध करता हुआ वृत्र (मेघ) तथा बिजुली गर्जन आदि भी ईश्वर का पार नहीं पा सकते।* हे परमात्मन्! आपका पार कौन पा सके? क्योंकि (एकः) एक-असहाय अपने से भिन्न स्वसामर्थ्य से ही (विश्वम्) सब जगत् को (आनुषक्) आनुषक्त अर्थात् उसमें व्याप्त होते, और (चकृषे) -कृतवान्-आपने ही उत्पन्न किया है। फिर जगत् के पदार्थ आपका पार कैसे पा सकें? तथा (अन्यत्) आप जगत्रूप कभी नहीं बनते, न अपने में से जगत् को रचते हो, किन्तु अनन्त अपने सामर्थ्य से ही जगत् का रचन धारण और लय यथाकाल करते हो। इससे आपका सहाय हम लोगों को सदैव है।।१५।।

प्रार्थना-विषयः

* जैसे कोई मद में मग्न होके रणभूमि में युद्ध करे, वैसे मेघ का भी दृष्टान्त जानना।

ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः॥१६॥

–ऋ० १। ३। १०। ४॥

व्याख्यान- हे सर्वोपरि विराजमान परब्रह्मन्! आप (ऊर्ध्वः) सबसे उत्कृष्ट हो, हमको कृपा से उत्कृष्ट गुणवाले करो, तथा ऊर्ध्व देश में हमारी रक्षा करो। हे सर्वपापप्रणाशकेश्वर! हमको (केतुना) विज्ञान अर्थात् विविध विद्यादान देके (अंहसः) अविद्यादि महापाप से (निपाहि) नितरां पाहि–सदैव अलग रक्खो। तथा (विश्वम्) इस सकल संसार का भी नित्य पालन करो। हे सत्यमित्र न्यायकारिन्! जो कोई प्राणी (अत्रिणम्) हम से शत्रुता करता है उसको, और कामक्रोधादि शत्रुओं को आप (संदह) सम्यक् भस्मीभूत करो (अच्छे प्रकार जलाओ) (कृधी न ऊर्ध्वान्) हे कृपानिधे! हमको विद्या, शौर्य, धैर्य, बल, पराक्रम, चातुर्य, विविध, धन, ऐश्वर्य, विनय, साम्राज्य, सम्मति, सम्प्रीति, स्वेदशसुख–संम्पादनादि गुणों में सब नरदेहधारियों से अधिक उत्तम करो। तथा (चरथाय जीवसे) सबसे अधिक आनन्दभोग, सब देशों में अव्याहतगमन (इच्छानुकूल जाना–आना) आरोग्यदेह, शुद्ध मानस–बल और विज्ञान इत्यादि के लिए हमको उत्तमता और अपनी पालनायुक्त करो। (विदाः) विद्यादि उत्तमोत्तम धन (देवेषु) विद्वानों के बीच में प्राप्त करो। अर्थात् विद्वानों के मध्य में भी उत्तम प्रतिष्ठायुक्त सदैव हमको रक्खो॥१६॥

प्रार्थना–विषयः

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्॥१७॥

–ऋ० १। ६। १६। ५

व्याख्यान–हे त्रैकाल्याबाध्येश्वर! (अदितिर्द्यौः) आप सदैव विनाशरहित तथा स्वप्रकाशरूप हो। (अदितिरन्तरिक्षम्) अविकृत (विकार को न प्राप्त) और सब के अधिष्ठाता हो। (अदितिर्माता) आप प्राप्तमोक्ष जीवों को अविनश्वर (विनाश–रहित) सुख देने, और अत्यन्त मान करनेवाले हो। (स पिता) सो अविनाशीस्वरूप हम सब लोगों के पिता (जनक) और पालक हो। और (स पुत्रः) सो ईश्वर आप मुमुक्षु, धर्मात्मा और विद्वानों को नरकादि दुःखों से पवित्र और त्राण (रक्षण) करनेवाले हो।

(विश्वे देवा अदितिः) सब देव-दिव्यगुण विश्व का धारण रचन, मारण, पालन आदि कार्यों को करनेवाले अविनाशी परमात्मा आप ही हैं। (पञ्चजना अदितिः) पांच प्राण, जो जगत् के जीवन-हेतु, वे भी आपके रचे और आपके भी नाम हैं। (जातमदितिः) वही एक चेतन ब्रह्म आप सदा प्रादुर्भूत हैं। और सब कभी प्रादुर्भूत कभी अप्रादुर्भूत (विनाशभूत) भी हो जाते हैं। (अदितिर्जनित्वम्) वही अविनाशीस्वरूप ईश्वर आप सब जगत् का 'जनित्वम्'-जन्म का हेतु हैं, और कोई नहीं*।।१७।।

प्रार्थना-विषयः

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान्।
अर्यमा देवैः सजोषाः।।१८।। -ऋ० १। ६। १७। १

व्याख्यान-हे महाराजाधिराज परमेश्वर! आप हमको (ऋजुनीती) सरल (शुद्ध) कोमलत्वादिगुणविशिष्ट चक्रवर्ती राजाओं की नीति को (नयतु) कृपादृष्टि से प्राप्त करो। आप (वरुणः) सर्वोत्कृष्ट होने से वरुण हो, सो हमको वरराज्य, वरविद्या, वरनीति देओ। तथा (मित्रः) सबके मित्र शुत्रतारहित हो, हमको भी आप मित्रगुणयुक्त न्यायाधीश कीजिये। तथा आप [(विद्वान्)] सर्वोत्कृष्ट विद्वान् हो, हमको भी सत्यविद्या से युक्त सुनीति देके साम्राज्याधिकारी सद्यः कीजिये। तथा आप (अर्यमा) (यमराज) प्रियाप्रिय को छोड़के न्याय में वर्त्तमान हो, सब संसार के जीवों के पाप और पुण्यों की यथायोग्य व्यवस्था करनेवाले हो, सो हमको भी आप तादृश करें। जिससे (देवैः, सजोषाः) आपकी कृपा से विद्वानों वा दिव्यगुणों के साथ उत्तम प्रीतियुक्त आप में रमण और आपका सेवन करनेवाले हों। हे कृपासिन्धो भगवन्! हम पर सहाय करो, जिससे सुनीतियुक्त होके हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े।।१८।।

प्रार्थना-विषयः

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा।
त्वं भद्रो असि क्रतुः।।१९।। -ऋ० १। ६। १९। ५

व्याख्यान-हे सोमराजन्! सत्पते परमेश्वर! तुम (सोमः) सर्वसवनकर्त्ता-सब का सार निकालनेहारे, प्राप्यस्वरूप, शान्तात्मा हो। तथा [(सत्पतिः)] सत्पुरुषों का

---

* ये सब नाम दिव आदि अन्य वस्तुओं के भी होते हैं, परन्तु यहाँ ईश्वराभिप्रेत से ही अर्थ किया, सो प्रमाण जानना चाहिये।

प्रतिपालन करनेवाले हो। [(राजा)] तुम्हीं सब के राजा (उत) और (वृत्रहा) मेघ के रचक धारक और मारक हो। [(भद्रः)] भद्रस्वरूप, भद्र करनेवाले, और (क्रतुः) सब जगत् के कर्त्ता आप ही हो।।१९।।

प्रार्थना-विषयः

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः।
न रिष्येत् त्वावतः सखा।।२०।। —ऋ० १।६।२०।३।।

व्याख्यान—हे सोम राजन्नीश्वर! तुम (अघायतः) जो कोई प्राणी हम में पापी और पाप करने की इच्छा करनेवाले हों, (विश्वतः) उन सब प्राणियों से हमारी (रक्ष) रक्षा करो। जिसके आप सगे मित्र हो, (न रिष्येत्) वह कभी विनष्ट नहीं होता। किन्तु हमको आपके सहाय से तिलमात्र भी दुःख वा भय कभी नहीं होगा। जो आपका मित्र और जिसके आप मित्र हो, उसको दुःख क्योंकर हो ? ।।२०।।

प्रार्थना-विषयः

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्।।२१।। —ऋ० १।२।७।५

व्याख्यान— हे विद्वान् और मुमुक्षु जीवो! [(विष्णोः०)] विष्णु का जो परम (अत्यन्तोत्कृष्ट पद) पदनीय सबके जानने योग्य, जिस को प्राप्त होके पूर्णानन्द में रहते हैं, फिर वहाँ से कभी दुःख में नहीं गिरते, उस पद को (सूरयः) धर्मात्मा, जितेन्द्रिय सब के हितकारक विद्वान् लोग यथावत् अच्छे विचार से देखते हैं। वह परमेश्वर का पद है। किस दृष्टान्त से? कि जैसे आकाश में (चक्षुः) नेत्र की व्याप्ति वा सूर्य का प्रकाश सब ओर से व्याप्त है, वैसे ही (दिवीव, चक्षुराततम्) परब्रह्म सब जगह में परिपूर्ण एकरस भर रहा है। वही परमपदस्वरूप परमात्मा 'परमपद' है। इसी की प्राप्ति होने से जीव जीवन सब दुःखों से छूटता है। अन्यथा जीव को कभी सुख नहीं मिलता। इससे सब प्रकार से परमेश्वर की प्राप्ति में यथावत् प्रयत्न करना चाहिए।।२१।।

प्रार्थना-विषयः

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः।।२२।।

—ऋ० १। ३। १८। २

व्याख्यान—(परमेश्वरो हि सर्वजीवेभ्य आशीर्ददाति) ईश्वर सब जीवों को आशीर्वाद देता है कि-हे जीवो! (वः) (युष्माकम्) तुम्हारे आयुध अर्थात् शतघ्नी (तोप), भुशुण्डी (बन्दूक), धनुषबाण, असि (तलवार), शक्ति (बरछी) आदि शस्त्र स्थिर और "वीळू" दृढ़ हों। किस प्रयोजन के लिए ? (पराणुदे) तुम्हारे शुत्रओं के पराजय के लिए। जिससे तुम्हारे कोई दुष्ट शत्रु लोग कभी दुःख न दे सकें। (उत प्रतिष्कभे) [और] शत्रुओं के वेग को थामने के लिए (युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी] तुम्हारी बलरूप उत्तम सेना सब संसार में प्रशंसित हो। जिससे तुमसे लड़ने को शत्रु का कोई संकल्प भी न हो। परन्तु (मा मर्त्यस्य मायिनः) जो अन्यायकारी मनुष्य है, उसको हम आशीर्वाद नहीं देते। दुष्ट, पापी, ईश्वरभक्तिरहित मनुष्य का बल और राज्यैश्वर्यादि कभी मत बढ़ो। उसका पराजय ही सदा हो। हे बन्धुवर्गो! आओ अपने सब मिलके सर्व दुःखों का विनाश और विजय के लिए ईश्वर को प्रसन्न करें, जो अपने को वह ईश्वर आशीर्वाद देवे। जिससे अपने शत्रु कभी न बढ़ें।।२२।।

स्तुति-विषयः

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा।।२३।। —ऋ०। १। २। ७। ४

व्याख्यान—हे जीवो! (विष्णोः०) व्यापकेश्वर के किये दिव्य जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि कर्मों को तुम देखो। (प्रश्न)—किस हेतु से हम लोग जानें कि ये व्यापक विष्णु के कर्म हैं? (उत्तर)—(यतो व्रतानि पस्पशे) जिससे हम लोग ब्रह्मचर्यादि व्रत तथा सत्यभाषणादि व्रत, और ईश्वर के नियमों का अनुष्ठान करने को जीव सशरीरधारी होके समर्थ हुए हैं। यह काम उसी के सामर्थ्य से है। क्योंकि (इन्द्रस्य युज्यः सखा) इन्द्रियों के साथ वर्त्तमान कर्मों का कर्त्ता, भोक्ता जो जीव इसका वही एक योग्य मित्र है, अन्य कोई नहीं। क्योंकि ईश्वर जीव का अन्तर्यामी है, उससे परे जीव का हितकारी कोई और नहीं हो सकता। इससे परमात्मा से सदा मित्रता रखनी चाहिये।।२३।।

प्रार्थना-विषयः

परा णुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि।

अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम्॥२४॥

—ऋ० ५। ३। २१। ५

व्याख्यान—हे (मघवन्) परमैश्वर्यवन् इन्द्र परमात्मान्! (अमित्रान्) हमारे सब शत्रुओं को (पराणुदस्व) परास्त कर दे। हे दातः! (सुवेदाः नो वसू कृधि) हमारे लिए सब पृथिवी के धन सुलभ (सुख से प्राप्त) कर। (महाधने) युद्ध में [(अस्माकम्)] हमारे और हमारे मित्र तथा सेनादि के (अविता) रक्षक (वृधः) वर्द्धक (भव) आप ही हो तथा (बोधि) हमको अपने ही जानो। हे भगवन्! जब आप ही हमारे योद्धारक्षक होंगे, तभी हमारा सर्वत्र विजय होगा। इसमें सन्देह नहीं ॥२४॥

प्रार्थना-विषयः

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः।
शं नः सत्यस्य सूयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२५॥

—ऋ० ५। ३। २८। २॥

व्याख्यान—हे ईश्वर! (भगः) आप और आपका दिया हुआ ऐश्वर्य (शं नः) हमारे लिए सुखकारक हो। (शमु नः शंसो अस्तु) आपकी कृपा से हमारी सुखकारक प्रशंसा सदैव हो। (पुरन्धिः शमु सन्तु रायः) संसार के धारण करनेवाले आप तथा प्राण वायु और सब धन आपकी कृपा से आनन्दायक हों। (शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः) सत्य, यथार्थ धर्म, सुसंयम और जितेन्द्रियतादिलक्षणयुक्त की जो प्रशंसा (पुण्यस्तुति) सब संसार में प्रसिद्ध है, वह परमानन्द और शान्तियुक्त हमारे लिये हो। (शं नो अर्यमा) न्यायकारी आप (पुरुजातः) अनन्त सामर्थ्ययुक्त हमारे कल्याणकारक होओ ॥२५॥

स्तुति-विषयः

त्वमसि प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य। अग्ने रथीरध्वराणाम् ॥२६॥

—ऋ० ५। ८। ३५। २

व्याख्यान—हे (अग्ने) सर्वज्ञ! तू ही सर्वत्र (प्रशस्यः) स्तुति करने के योग्य है, अन्य कोई नहीं। (विदथेषु) यज्ञ और युद्धों में आप ही स्तोतव्य हो। जो तुम्हारी स्तुति को छोड़के अन्य जड़ादि की स्तुति करता है, उसके यज्ञ तथा युद्धों में विजय कभी सिद्ध नहीं होती है। (सहन्त्य) शत्रुओं के समूहों के आप ही घातक हो।

(रथीरध्वराणाम्) अध्वरों अर्थात् यज्ञ और युद्धों में आप ही रथी हो। [आप ही] हमारे शत्रुओं के योद्धाओं को जीतनेवाले हो। इस कारण से हमारा पराजय कभी नहीं हो सकता ।।२६।।

प्रार्थना-विषयः

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निरापऽ ओषधीर्वनिनो जुषन्त।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।२७।।

—ऋ० ५। ३। २७। ५

व्याख्यान—हे भगवन्! (तन्न इन्द्रः) सूर्य (वरुणः) चन्द्रमा (मित्रः) वायु (अग्निः) अग्नि (आपः) जल (ओषधीः) वृक्षादि वनस्थ सब पदार्थ आप की आज्ञा से सुखरूप होकर हमारा सेवन करें। हे रक्षक! (मरुतामुपस्थे) प्राणादि के सुसमीप बैठे हुए हम आपकी कृपा से (शर्मन्त्स्याम) सुखयुक्त सदा रहें। (स्वस्तिाभिः) सब प्रकार के रक्षणों से (यूयं पात) आदरार्थ बहुवचनम्, आप हमारी रक्षा करो। किसी प्रकार से हमारी हानि न हो ।।२७।।

स्तुति-विषयः

ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा। इन्द्र चोष्कूयसे वसु ।।२८।।

—ऋ० ५। ८।१७। १।।

व्याख्यान—हे ईश्वर! (ऋषिः) सर्वज्ञ और (पूर्वजाः) सब के पूर्व जनक के (एकः) अद्वितीय (ईशानः) ईशनकर्त्ता अर्थात् ईश्वरता करनेहारे, तथा सब से बड़े प्रलयोत्तरकाल में आप ही रहनेवाले (ओजसा) अनन्तपराक्रम से युक्त हो। हे (इन्द्र) महाराजाधिराज! (चोष्कूयसे वसु) सब धन के दाता शीघ्र कृपा का प्रवाह अपने सेवकों पर कर रहे हो। आप अत्यन्त आर्द्रस्वभाव हो ।।२८।।

प्रार्थना-विषयः

नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत।
गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्यते
ऽनेहसो व ऊतयः सु ऊतयो व ऊतयः ।।२९।। —ऋ० ६। ४। ९। २

व्याख्यान—हे भगवन्! (रक्षस्विने भद्रं नेह) पापी, हिंसक, दुष्टात्मा को इस संसार में सुख मत देना। (नावयै) धर्म से विपरीत चलनेवाले को सुख कभी मत हो। तथा

(नोपया उत) अधर्मी के समीप रहनेवाले उसके सहायक को भी सुख नहीं हो। ऐसी प्रार्थना आप से हमारी है कि दुष्ट को सुख कभी न होना चाहिए। नहीं तो कोई जन धर्म में रुचि ही न करेगा। किन्तु इस संसार में धर्मात्माओं को ही सुख सदा दीजिए। [(गवे)] तथा हमारी शमदमादियुक्त इन्द्रियाँ, दुग्ध देनेवाली गौ आदि [(वीराय)] वीर पुत्र और शुरवीर भृत्य (श्रवस्यते) विद्या विज्ञान और अन्नाद्यैश्वर्ययुक्त हमारे देश के राजा और धनाढ्यजन तथा इनके लिए (अनेहसः) निष्पाप, निरुपद्रव, स्थिर दृढ़ सुख हो। (व ऊतयो व ऊतयः) (वः युष्माकं, बहुवचनमादरार्थम्) हे सर्वरक्षकेश्वर! आप सर्वरक्षण अर्थात् पूर्वोक्त सब धर्मात्माओं के रक्षक हैं। जिन पर आप रक्षक हो, उनको सदैव (भद्रम्) कल्याण [परमसुख] प्राप्त होता है, अन्य को नहीं ।।२९।।

स्तुति-विषयः

वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः।
स्याम ते सुमतावपि ।।३०।। —ऋ० ६। ३। ४०। ४

व्याख्यान—हे परमात्मन्! आप (वसुः) अर्थात् सबको अपने में बसानेवाले, और सबमें आप बसनेवाले हो। तथा (वसुपतिः) पृथिव्यादि वासहेतुभूतों के पति हो। (कमसि) हे अग्ने विज्ञानानन्द स्वप्रकाशस्वरूप! आप ही सब के सुखकारक और सुखस्वरूप हो। तथा (विभावसुः) सत्यस्वप्रकाशकैधनमय हो। हे भगवन् ! ऐसे जो आप, उन (ते) आप की (सुमतौ) अत्यन्तोत्कृष्ट ज्ञान और परस्पर प्रीति में हम लोग स्थिर हों ।।३०।।

प्रार्थना-विषयः

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः।
इतो जातो वि श्वमिदं वि चष्टे वै श्वानरो यतते सूर्येण ।।३१।।

—ऋ० १। ७। ६। १

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! जो (राजा हि) हमारा तथा सब जगत् का राजा, सब भुवनों का स्वामी, (कम्) सब का सुखदाता, और (अभिश्रीः) सब का निधि (शोभाकारक) है। (वैश्वानरो यतते सूर्येण) संसारस्थ सब नरों का नेता (नायक) और सूर्य के साथ हो वही प्रकाशक है, अर्थात् सब प्रकाशक पदार्थ उसके रचे हैं। (इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे) इसी ईश्वर के सामर्थ्य से ही यह संसार उत्पन्न हुआ है,

अर्थात् उसने रचा है। (वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम) उस वैश्वानर परमेश्वर की सुमति अर्थात् सुशोधन (उत्कृष्ट) ज्ञान में हम निश्चित सुखस्वरूप और विज्ञानवाले हों। हे महाराजाधिराजेश्वर! आप इस हमारी आशा को कृपा से पूरी करो ।।३१।।

स्तुति-विषयः

न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्चन शवसो अन्तमापुः।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मोदिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ।।३२।।

—ऋ०-१। ७। १०। ५

व्याख्यान—हे अनन्तबल ! (न यस्य) जिस परमात्मा का और उसके बलादि सामर्थ्य का (देवाः) इन्द्रिय, (देवताः) विद्वान्, सूर्यादि तथा बुद्ध्यादि (न मर्ताः) साधारण मनुष्य, (आपश्चन) आप (प्राण) वायु, समुद्र इत्यादि सब (अन्तम्) पार कभी नहीं पा सकते, किन्तु (प्ररिक्वा) प्रकृष्टता से इनमें व्यापक होके अतिरिक्त (इनसे विलक्षण) भिन्न ही परिपूर्ण हो रहा हैं। सो (मरुत्वान्) अत्यन्त बलवान् इन्द्र परमात्मा (त्वक्षसा) शत्रुओं के बल का छेदक, बल से (क्ष्मः) पृथिवी को (दिवश्च) स्वर्ग को धारण करता है, सो (इन्द्रः) परमात्मा (ऊती) हमारी रक्षा के लिए (भवतु) तत्पर हो।।३२।।

प्रार्थना-विषयः

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ।।३३।।

—ऋ० १। ७। ७। १।।

व्याख्यान—हे (जातवेदः) परब्रह्मन्! आप (जातवेद हो) उत्पन्नमात्र सब जगत् को जाननेवाले हो, सर्वत्र प्राप्त हो। जो विद्वानों से ज्ञात, सब में विद्यमान, जात अर्थात् प्रादुर्भूत अनन्त धनवान् वा अनन्त ज्ञानवान् हो, इस से आपका नाम 'जातवेद' है। उन आप के लिए (वयम् सोमं सुनवाम) जितने सोम प्रिय गुणविशिष्टादि हमारे पदार्थ हैं, वे सब आपके ही लिये हैं। सो आप हे कृपालो! (अरातीयतः) दुष्ट शत्रु, जो हम धर्मात्माओं का विरोधी, उसके (वेदः) धनैश्वर्यादि [को] (निदहाति) नित्य दहन करो। जिससे वह दुष्टता को छोड़के श्रेष्ठता को स्वीकार करे। सो (नः) हमको (दुर्गाणि विश्वा) सम्पूर्ण दुस्सह दुःखों से (पर्षदति) पार करके आप नित्य सुखको

प्राप्त करो। (नावेव सिन्धुम्) जैसे अति कठिन नदी वा समुद्रपार होने के लिए नौका होती है, (दुरितात्यग्निः) वैसे ही हम को सब पापजनित अत्यन्त पीड़ाओं से पृथक् (भिन्न) करके संसार में, और मुक्ति में ही परम सुख को शीघ्र प्राप्त करो ।।३३।।

स्तुति-विषयः

स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ।।३४।।

—ऋ० १।७।१०।२

व्याख्यान—हे दुष्टनाशक परमात्मन्! आप (वज्रभृत्)? अच्छेद्य, दुष्टों के छेदक सामर्थ्य से सर्वशिष्ट-हितकारक दुष्टविनाशक जो न्याय, उसको धारण कर रहे हो। (प्राणो वा वज्रः) इत्यादि शतपथादि का प्रमाण है। अतएव (दस्युहा) दुष्ट पापी लोगों का हनन करनेवाले हो। (भीमः) आपकी न्याय-आज्ञा को छोड़नेवालों पर भयंकर भय देनेवाले हो। (सहस्रचेताः) सहस्रों विज्ञानादि गुणवाले आप ही हो। (शतनीथः) सैकड़ों असंख्यात (पदार्थों) की प्राप्ति करानेवाले हो। (ऋभ्वा) अत्यन्त विज्ञानादि प्रकाशवाले हो, और सबके प्रकाशक हो, तथा महान् वा महाबलवाले हो। (न चम्रीषः) किसी की (चमू) सेना में वश को प्राप्त नहीं होते हो। (शवसा) स्वबल से आप (पाञ्चजन्यः) पाँच प्राणों के जनक हो। (मरुत्वान्) सब प्रकार के वायुओं के आधार तथा चालक हो। सो आप [(इन्द्रः)] इन्द्र हमारी रक्षा के लिए प्रवृत्त हों, जिससे हमारा कोई काम बिगड़े नहीं ।।३४।।

प्रार्थना-विषयः

सेमं नः काममापृण गोभिरश्वैः शतक्रतो।
स्तवाम त्वा स्वाध्यः।।३५।। —ऋ० १।१।३१।४

व्याख्यान—हे (शतक्रतो) अनन्तक्रियेश्वर! आप असंख्यात विज्ञानादि यज्ञों से प्राप्य हो, तथा अनन्तक्रियाबलयुक्त हो। सो आप (गोभिरश्वैः) गाय, उत्तम इन्द्रिय, श्रेष्ठ पशु, सर्वोत्तम (अश्वविद्या) विमानादियुक्त, तथा अश्व अर्थात् श्रेष्ठ घोड़ादि पशुओं और चक्रवर्ती राज्यैश्वैर्य से (सेमं नः काममापृण) हमारे काम को परिपूर्ण करो। फिर हम भी (स्तवाम त्वा स्वाध्यः) सुबुद्धियुक्त होके उत्तम प्रकार से आपका स्तवन (स्तुति) करें। हमको दृढ़ निश्चय है कि आपके विना दूसरा कोई किसी का काम पूर्ण

नहीं कर सकता। आपको छोड़के दूसरे का ध्यान वा यचना जो करते हैं, उनके सब काम नष्ट हो जाते हैं।।३५।।

स्तुति-विषयः

सोम॑ गी॒र्भिष्ट्वा॑ व॒यं व॒र्द्धया॑मो वचो॒विद॑ः।
सु॒मृ॒ळीको॒ न॒ आ वि॑श॥३६॥ —ऋ० १। ६। २१। १

व्याख्यान—हे (सोम) सर्वजगदुत्पादकेश्वर! [(त्वा)] आपको (वचोविदः) शास्त्रविद् [(वयम्)] हम लोग (गीर्भिः) स्तुतिसमूह से (वर्द्धयामः) सर्वोपरि विराजमान मानते हैं। (सुमृडीकः नः आविश) क्योंकि हमको सुष्ठु सुख देनेवाले आप ही हो। सो कृपा करके हमको आप आवेश करो। जिससे हम लोग अविद्यान्धकार से छूट और विद्यासूर्य को प्राप्त होके आनन्दित हों।।३६।।

स्तुतिविषयः

सोम॑ रार॒न्धि नो॑ हृ॒दि गावो॒ न यव॑से॒ष्वा।
मर्यो॑ इव॒ स्व ओक्ये॑॥३७॥ —ऋ०१। ६। २१। ३

व्याख्यान—हे (सोम) सोभ्य सौख्यप्रदेश्वर! आप कृपा करके (रारन्धि नो हृदि) हमारे हृदय में यथावत् रमण करो। दृष्टान्त—जैसे सूर्य की किरण, विद्वानों का मन और गाय पशु अपने-अपने विषय और घासादि में रमण करते हैं।* वा जैसे (मर्यइव स्वे ओक्ये) मनुष्य अपने घर में रमण करता है, वैसे ही आप सदा स्वप्रकाशयुक्त हमारे हृदय (आत्मा) में रमण कीजिए। जिससे हमको यथार्थ सर्व ज्ञान और आनन्द हो।।३७।।

स्तुति-विषयः

गय॒स्फानो॑ अमीव॒हा व॑सु॒वित्पु॑ष्टि॒वर्ध॑नः ।
सु॒मि॒त्रः सो॑म नो भव॥३८॥ —ऋ० १। ६। २१। २

व्याख्यान—हे परमात्मभक्त जीवो! अपना इष्ट जो परमेश्वर सो (गयस्फानः) प्रजा, धन, जनपद और स्वराज्य बढ़ानेवाला है। तथा (अमीवहा) शरीर-इन्द्रियजन्य और मानस रोगों का हनन (विनाश) करनेवाला है। (वसुवित्) सब पृथिव्यादि वसुओं का जाननेवाला है, अर्थात् सर्वज्ञ और विद्यादि धन का दाता है। (पुष्टिवर्धनः)

---

* दृष्टान्त का एक देश रमणमात्र लेना।

अपने शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा की पुष्टि का बढ़ानेवाला है। (सुमित्रः सोम नो भव) सुष्ठु यथावत् सबका परम मित्र वही है। सो अपने उससे यह मांगें कि, हे सोम सर्वजगदुत्पादक! आप ही कृपा करके सुमित्र हों, और हम भी सब जीवों के मित्र हों, तथा अत्यन्त मित्रता आप से ही रक्खें ।।३८।।

प्रार्थना-विषयः

त्वं हि वि॑श्वतोमुख वि॒श्वतः॑ परि॒भूरसि॑।
अप॑ न॒: शोशु॑चद॒घम् ।।३९।। —ऋ०१।७।५।६।।

व्याख्यान—हे अग्ने परमात्मन्! (त्वं हि) तुम ही (विश्वतः परिभूरसि) सब जगत् में सब ठिकानों में व्याप्त हो। अत एव आप [(विश्वतोमुखः)] विश्वतोमुख हो। हे सर्वतोमुख अग्ने! आप स्वमुख नाम स्वशक्ति से सब जीवों के हृदय में सत्योपदेश नित्य ही कर रहे हो, वही आपका मुख है। हे कृपालो! (अप नः शोशुचदघम्) आप की इच्छा से हमारा पाप सब नष्ट हो जाय। जिससे हम लोग निष्पाप होके आपकी भक्ति और आज्ञापालन में नित्य तत्पर रहें ।।३९।।

स्तुति-विषयः

तमी॑ळत प्रथ॒मं य॑ज्ञसाध॑ं विश॒ आरी॒राहु॑तमृञ्जसा॒नम्।
ऊ॒र्जः पु॒त्रं भ॑र॒तं सृ॒प्रदा॑नुं दे॒वा अ॒ग्निं धा॑रयन्द्रविणो॒दाम् ।।४०।।

—ऋ० १।७।३।३।।

व्याख्यान—हे मनुष्यो! (तमीळत) उस अग्नि की स्तुति करो। कैसा है वह अग्नि? (प्रथमम्) सब कार्यों से पहले वर्त्तमान, और सब का आदि कारण है। तथा (यज्ञसाधम्) सब संसार और विज्ञानादि यज्ञ का साधक (सिद्ध करनेवाला) सब का जनक है। हे (विशः) मनुष्य! उसी को ही स्वामी मानकर (आरीः) प्राप्त होओ [(आहुतम् ऋञ्जसानम्)] जिसको हम अपने पुकारते हैं, और जिसको विज्ञानादि से विद्वान् लोग सिद्ध करते हैं, और जानते हैं, [वही] (ऊर्जः पुत्रं भरतम्) पृथिव्यादि जगत्रूप अन्न का पुत्र अर्थात् पालन करनेवाला तथा भरत अर्थात् उसी अन्न का पोषण और धारण करनेवाला है। (सृप्रदानुम्) सब जगत् को चलने की शक्ति देनेवाला और ज्ञान का दाता है। उसी को (देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्) देव (विद्वान् लोग) अग्नि कहते, और धारण करते हैं। वही सब जगत् को द्रविण अर्थात् निर्वाह के सब

अन्न जलादि पदार्थ और विद्यादि पदार्थों का देनेवाला है। उस (अग्नि) परमात्मा को छोड़के अन्य किसी की भक्ति वा याचना कभी किसी को न करनी चाहिए।।४०।।

प्रार्थना-विषयः

तमूतयो॑ रणय॒च्छूर॑सातौ॒ तं क्षेम॑स्य क्षि॒तयः॑ कृण्वत॒ त्राम्।
स विश्व॑स्य व॒रुण॑स्येश॒ एको॑ म॒रुत्वा॑न्नो भव॒त्विन्द्र॑ ऊ॒ती ॥४१॥

—ऋ० १। ७। ९। २

व्याख्यान—हे मनुष्यो! (तमूतयः) उसी इन्द्र परमात्मा की प्रार्थना तथा शरणागति से अपने को (ऊतयः) अनन्त रक्षण तथा बलादि गुण प्राप्त होंगे। (शूरसातौ) युद्ध में अपने को यथावत् (रणयन्) रमण और रणभूमि में शूर-वीरों के गुण परस्पर प्रीत्यादि प्राप्त करावेगा। (तं क्षेमस्य क्षितयः) हे शूरवीर मनुष्यो! उसी को क्षेम-कुशलता का (त्राम्) रक्षक (कृण्वत) करो। जिससे अपना पराजय कभी न हो। क्योंकि (सः विश्वस्य) सो करुणामय, सब जगत् पर करुणा करनेवाला (एकः) एक ही है, अन्य कोई नहीं। सो परमात्मा (मरुत्वान्) प्राण, वायु, बल, सेनायुक्त (ऊती) (ऊतये) सम्यक् हम लोगों पर कृपा से रक्षक हो। ईश्वर से रक्षित हम लोग कभी पराजय को प्राप्त न हों ।।४१।।

स्तुति-विषयः

स पू॒र्व्या नि॒विदा॑ क॒व्यता॑योरि॒माः प्र॒जा अ॑जनय॒न् मनू॑नाम्।
वि॒वस्व॑ता॒ चक्ष॑सा॒ द्याम॒पश्च॑ दे॒वा अ॒ग्निं धा॑रयन् द्रविणो॒दाम् ॥४२॥

—ऋ० १। ७। ३। २

व्याख्यान—हे मनुष्यो! सो ही (पूर्वया निविदा) आदि सनातन, सत्यता आदि गुणयुक्त अग्नि परमात्मा था, अन्य कोई नहीं था। तब सृष्टि के आदि में स्वप्रकाशस्वरूप एक ईश्वर प्रजा की उत्पत्ति की ईक्षणता (विचार) [करता भया। (कव्यतायोरिमाः) सर्वज्ञतादि सामर्थ्य से ही सत्यविद्यायुक्त वेदों की, तथा (मनूनाम्) मननशीलवाले मनुष्यों की, तथा अन्य पशुवृक्षादि की (प्रजाः) प्रजा को (अजनयत्) उत्पन्न किया, परस्पर मनुष्य और पशु आदि के व्यवहार चलने के लिए। परन्तु मननशीलवाले मनुष्यों को अवश्य स्तुति करने योग्य वही है। (विवस्वता चक्षसा) सूर्यादि तेजस्वी सब पदार्थों का प्रकाशनेवाला, अपने बल से स्वर्ग (सुखविशेष) सब

लोक [अपः। अन्तरिक्ष में पृथिव्यादि मध्यमलोक] और निकृष्ट दुःख विशेष नरक और सब दृश्यमान तारे आदि लोक उसी ने रचे हैं। जो ऐसा सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर देव है, उसी (द्रविणोदाम्) विज्ञानादि धन देनेवाले को ही (देवाः) विद्वान् लोग अग्नि जानते हैं। हम लोग उसी को ही भजें ।।४२।।

प्रार्थना-विषयः

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज॥ ४३ ॥

—ऋ० १। ७। १४। ४

व्याख्यान—हे (इन्द्र) परमात्मन्! (त्वया युजा वयं जयेम) आपके साथ वर्त्तमान, आपके सहाय से हम लोग दुष्ट शत्रुओं को जीतें। कैसा है वह शत्रु ? कि (आवृतम्) हमारे बल से घिरा हुआ। हे महाराजाधिराजेश्वर! (भरे भरे अस्माकमंशमुदवा) युद्ध-युद्ध (प्रत्येक युद्ध) में हमारे 'अंश' (बल) सेना का (उदव)उत्कृष्ट रीति से कृपा करके रक्षण करो। जिससे किसी युद्ध क्षीण होके हम पराज्य को प्राप्त न हों। किन्तु जिनको आपका सहाय है, उनका सर्वत्र विजय ही होता है। हे (इन्द्र मघवन्) महाधनेश्वर! (शत्रूणां वृष्ण्या) हमारे शत्रुओं के [वृष्ण्या] वीर्य पराक्रमादि को (प्ररुज) प्रभग्न—रुग्ण करके नष्ट कर दे। (अस्मभ्यं वरिवः सुगं कृधि) हमारे लिए चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य धन को (सुगम्) सुख से प्राप्त कर। अर्थात् आपकी करुणा कटाक्ष से हमारा राज्य और धन सदा वृद्धि को प्राप्त हो ।।४३।।

स्तुतिविषयः

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत्।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥४४॥

—ऋ० १। ७। १२। ५

व्याख्यान—हे मनुष्यो! [(यो विश्वस्य जगतः)] जो सब जगत् (स्थावर) जड़ अप्राणी का, और (प्राणतः) चेतनावाले जगत् का (पतिः) अधिष्ठाता और पालक है। तथा जो [(प्रथमः)] सब जगत् के प्रथम सदा से है। और (ब्रह्मणे गाः अविन्दत्) जिसने यही नियम किया है कि ब्रह्म अर्थात् विद्वान् के ही लिये पृथिवी का लाभ और उनका राज्य है। और जो (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमात्मा [(दस्यून्)]

डाकुओं को (अधरान्) नीचे [(अवातिरत्)] गिराता है, तथा उनको मार ही डालता है। (मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे) सो आओ मित्रो भाई लोगो ! अपने सब सम्प्रीति से मिलके 'मरुत्वान्' अर्थात् परमानन्त बलवाले इन्द्र परमात्मा को सखा होने के लिए अत्यन्त प्रार्थना से गद्गद होके पुकारें। वह शीघ्र ही कृपा करके अपने से सखित्व (परममित्रता) करेगा। इसमें कुछ सन्देह नहीं।।४४।।

प्रार्थना-विषयः

मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ।।४५।।

—ऋ० १। ८। ५। २

व्याख्यान—हे दुष्टों को रुलानेहारे [(रुद्र)] ईश्वर ! हमको (मृड) सुखी कर। तथा (मयस्कृधि) हमको 'मय' अर्थात् अत्यन्त सुख का सम्पादन कर। (क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते) शत्रुओं के वीरों का क्षय करनेवाले आपको अत्यन्त नमस्कारादि से परिचर्या करनेवाले आपको अत्यन्त नमस्कारादि से परिचर्या करनेवाले हम लोगों का रक्षण यथावत् कर। (यच्छम्) हे रुद्र ! आप हमारे पिता (जनक) और पालक हो, हमारी सब प्रजा को सुखी कर। (योश्च) और प्रजा के रोगों का भी नाश कर। जैसे (मनुः) मान्यकारक पिता (आयेजे) स्वप्रजा को संगत और अनेकविध लाड़न करता है, वैसे आप हमारा पालन करो। हे रुद्र भगवन्! (तव प्रणीतिषु) आपकी आज्ञा का प्रणय अर्थात् उत्तम न्याययुक्त नीतियों में प्रवृत्त होके (तदश्याम) वीरों के चक्रवर्ती राज्य को आपके अनुग्रह से प्राप्त हों ।।४५।।

स्तुति-विषयः

देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा।
पुरः सदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी।।४६।।

—ऋ० १। ५। १९। ३

व्याख्यान—हे प्रियबन्धु विद्वानो! (देवो न) ईश्वर सब जगत् के बाहर और भीतर सूर्य की नाईं प्रकाश कर रहा है। (यः पृथिवीम्) जो पृथिव्यादि जगत् को रचके धारण कर रहा है। और (विश्वधाया उपक्षेति) विश्वधारकशक्ति का भी निवास देने और धारण करनेवाला है। तथा जो सब जगत् का परम मित्र अर्थात् जैसे (हितमित्रो न

राजा) प्रियमित्रवान् राजा अपनी प्रजा का यथावत् पालन करता है, वैसे ही हम लोगों का पालनकर्त्ता वही एक है, अन्य कोई भी नहीं। (पुरःसदः शर्मसदो न वीराः) जो जन ईश्वर के 'पुरःसदः' हैं (ईश्वराभिमुख ही हैं) वे ही 'शर्मसदः' अर्थात् सुख में सदा स्थिर रहते हैं। जैसे (न वीराः) पुत्रलोग अपने पिता के घर में आनन्दपूर्वक निवास करते हैं, वैसे ही जो परमात्मा के भक्त हैं, वे सदा सुख ही रहते हैं। परन्तु जो अनन्यचित्त होके निराकार, सर्वत्र व्याप्त ईश्वर की सत्य श्रद्धा से भक्ति करते हैं, जैसे कि (अनवद्या पतिजुष्टेव नारी) अत्यन्तोत्तमगुणयुक्त, पति की सेवा में तत्पर पतिव्रता नारी (स्त्री) रात-दिन तन-मन-धन से अत्यन्त प्रीतियुक्त होके [पति के] अनुकूल ही रहती है, वैसे प्रेमप्रीतियुक्त होके आओ भाई लोगो! ईश्वर की भक्ति करें। और अपने सब मिलके परमात्मा से परमसुखलाभ उठावें ।।४६।।

प्रार्थना-विषयः

सा मां सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च।
विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः ।।४७।।

—ऋ० ७।८।१२।२

व्याख्यान—हे सर्वाभिरक्षकेश्वर! (सा मा सत्योक्तिः) आपकी सत्य आज्ञा, जिस का हमने अनुष्ठान किया है, वह (विश्वतः परिपातु) हमको सब संसार से सर्वथा पालन, और सब दुष्ट कामों से सदा पथृक् रक्खे, कि कभी हमको अधर्म करने की इच्छा भी न हो। (द्यावा च) दिव्य सुख से सदा युक्त करके यथावत् हमारी रक्षा करे। (यत्र) जिस दिव्य सृष्टि में (अहानि) सूर्यादिकों को दिवस आदि के निमित्त (ततनन्) आपने ही विस्तारे हैं, वहाँ भी हमारा सब उपद्रवों से रक्षण करो। (विश्वमन्यत्) आपसे अन्य (भिन्न) विश्व अर्थात् सब जगत् जिस समय आपके सामर्थ्य से प्रलय में (नि विशते) प्रवेश करता है (कार्य सब कारणात्मक होता है), उस समय में भी आप हमारी रक्षा करो। (यदेजति) जिस समय यह जगत् आपके सामर्थ्य से चलित होके उत्पन्न होता है, उस समय भी सब पीड़ाओं से आप हमारी रक्षा करें। (विश्वाहापो विश्वाहा०) जो-जो विश्व का हन्ता (दुःख देनेवाला) उसको आप नष्ट कर देओ। क्योंकि आपके सामर्थ्य से सब जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय होती है। आपके सामने कोई राक्षस (दुष्टजन) क्या कर सकता है? क्योंकि आप सब

जगत् में उदित (प्रकाशमान) हो रहे हो। सूर्य्यवत् हमारे हृदय में कृपा करके प्रकाशित होओ। जिससे हमारी अविद्यान्धकारता सब नष्ट हो।।४७।।

स्तुति-विषयः

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥४८॥

—ऋ० १। ६। ३२। ३

व्याख्यान—हे मनुष्यो! वह परमात्मा कैसा है कि हम लोग उसकी स्तुति करें ? हे (अग्ने) परमेश्वर! आप (देवः देवानामसि) देवों (परमविद्वानों के भी देव) परमविद्वान् हो, तथा उनको परमानन्द देनेवाले हो। तथा ([मित्रः] अद्भुतः) अत्यन्त आश्चर्यरूप मित्र, सर्वसुखकारक, सब के सखा हो। (वसुर्वसूनामसि) पृथिव्यादि वसुओं के भी वास करानेवाले हो। तथा (अध्वरे) ज्ञानादि यज्ञ में (चारुः) अत्यन्त शोभायमान और शोभा के देनेवाले हो। हे परमात्मन्! (सप्रथस्तमे सख्ये शर्मन् तव) आपके अतिविस्तीर्ण, आनन्दस्वरूप, सखाओं के कर्म में हम लोग स्थिर हों, जिससे हमको कभी दुःख प्राप्त न हो। और आपके अनुग्रह से हम लोग [(मा रिषामा)] परस्पर अप्रीतियुक्त कभी न हों। ।।४८।।

स्तुति-विषयः

मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥४९॥

—ऋ० १। ७। १९। ३

व्याख्यान— हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्तेश्वर ! (मा नो वधीः) हमारा वध मत कर। अर्थात् अपने से अलग हमको मत गिरावै। (मा परा दाः) हमसे अलग आप कभी मत हो। (मा नः प्रिया भोजनानि प्रमोषीः) हमारे प्रिय भोगों को मत चोर और मत चोरवावै। (आण्डा मा नः) हमारे गर्भों का विदारण मत कर। हे (मघवन्) सर्वशक्तिमन्! (शक्र) समर्थ! हमारे पुत्रों का विदारण मत कर। (मा नः पात्रा) हमारे भोजनाद्यर्थ सुवर्णादि पात्रों को हम से अलग मत कर। [सहजानुषाणि] जो-जो हमारे सहज अनुषक्त (स्वभाव से अनुकूल) मित्र हैं, उनको आप नष्ट मत करो। अर्थात् कृपा करके पूर्वोक्त सब पदार्थों की यथावत् रक्षा करो ।।४९।।

प्रार्थना-विषयः

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥ ५०॥

—ऋ० १।८।६।२

व्याख्यान—हे (रुद्र) दुष्टविनाशकेश्वर! आप हम पर कृपा करो। (मा नो महान्तम्) हमारे ज्ञानवृद्ध और वयोवृद्ध पिता इनको आप नष्ट मत करो। तथा (मा नो अर्भकम्) छोटे बालक, और (उक्षन्तम्) वीर्यसेचनसमर्थ जवान, तथा जो [(उक्षितम्)] गर्भ में वीर्य का सेचन किया है, उसको मत विनष्ट करो। तथा [(पितरं मोत मातरम्॰)] हमारे पिता, माता और प्रिय तनुओं (शरीरों) का (मा रीरिषः) हिंसन मत करो ॥५०॥

स्तुतिविषयः

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥५१॥

—ऋ० १।८।६।३

व्याख्यान—(मा नः तोके) कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठ पुत्र, (आयौ) उमर, (गोषु) गाय आदि पशु (अश्वेषु) घोड़ा आदि उत्तम यान, [(वीरान्)] हमारी सेना के शूरों में, (हविष्मन्तः) यज्ञ के करनेवाले, इन में (भामितः) क्रोधित और (मा रीरिषः) रोषयुक्त होके कभी प्रवृत्त मत हों। हम लोग आपको (सदमित्त्वा हवामहे) सर्वदैव आपका आह्वान करते हैं। हे भगवन् ! रुद्र परमात्मन् ! आपसे यही प्रार्थना है कि हमारी और हमारे पुत्र, धनैश्वर्यादि की रक्षा करो ॥५१॥

प्रार्थना-विषयः

उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद
विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ॥५२॥ —ऋ० २।८।१२।२

व्याख्यान— हे (शकुने) सर्वशक्तिमन्नीश्वर ! आप (उद्गातेव साम गायसि) साम को सदा गाते हो, वैसे ही हमारे हृदय में सब विद्या का प्रकाशित गान करो। जैसे यज्ञ में महापण्डित सामगान करता है, वैसे आप भी हम लोगों के बीच में सामादि

विद्या का गान=प्रकाश कीजिये। (ब्रह्मपुत्रइव सवनेषु) आप कृपा से सवन (पदार्थविद्याओं) की (शंससि) प्रशंसा करते हो, वैसे हमको भी यथावत् प्रशंसित करो। जैसे "ब्रह्मपुत्रइव" वेदों का वेत्ता विज्ञान से सब पदार्थों की प्रशंसा करता है, वैसे आप भी हम पर कृपा कीजिए। आप (वृषेव वाजी) सर्वशक्ति का सेचन करने, और अन्नादि पदार्थों के दाता, तथा महाबलवान् और वेगवान् होने से वाजी हो। जैसा कि वृषभ की नाईं आप उत्तम गुण और उत्तम पदार्थों की वृष्टि करनेवाले हो, वैसे हम पर उनकी वृष्टि करो। (शिशुमतीः) हम लोग आपकी कृपा से उत्तम-उत्तम शिशु (सन्तानादि) को (अपीत्य) प्राप्त होके आपको ही भजें। (आ सर्वतो नः शकुने) हे शकुने! सर्वसामर्थ्यवान् ईश्वर! सब ठिकानों से हमारे लिए (भद्रम्) कल्याण को (आ वद) अच्छे प्रकार कहो, अर्थात् कल्याण की ही आज्ञा और कथन करो। जिससे अकल्याण की बात भी कभी हम न सुनें। (विश्वतो नः शकुने) हे सबको सुख देनेवाले ईश्वर ! सब जगत् के लिए (पुण्यम्) धर्मात्मक कर्म करने को (आवद) उपदेश कर। जिस से कोई मनुष्य अधर्म करने की इच्छा भी न करे, और सब ठिकानों में सत्यधर्म की प्रवृत्ति हो ।।५२।।

प्रार्थना-विषयः

आ॒वद॒ꣳस्त्वं श॑कुने भ॒द्रमा व॑द तू॒ष्णीमासी॑नः सु॒मतिं चि॑किद्धि नः।
यदु॒त्पत॒न् वद॑सि कर्क॒रिर्यथा॑ बृ॒हद्व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ॥५३॥

—ऋ० २। ८। १२। ३।।

व्याख्यान—(आवदंस्त्वं शकुने) हे (शकुने) जगदीश्वर! आप (भद्रम्) कल्याण का भी कल्याण अर्थात् व्यावहारिक सुख के भी ऊपर मोक्षसुख का निरन्तर उपदेश सब जीवों को कीजिए। (तूष्णीमासीनः) हे अन्तर्यामिन् ! हमारे हृदय में सदा स्थिर हो मौन से ही (सुमतिम्) सर्वोत्तम ज्ञान देओ। (चिकिद्धि नः) कृपा से हमको अपने रहने के लिए घर ही बनाओ। और आप की परमविद्या को हम प्राप्त हों। (यदुत्पतन्) उत्तम व्यवहार में पहुँचाते हुए आप का (यथा) जिस प्रकार से (कर्करिर्वदसि) कर्त्तव्य कर्म, धर्म को ही अत्यन्त पुरुषार्थ से करो, अकर्त्तव्य दुष्ट कर्म मत करो मत करो, ऐसा उपदेश है कि पुरुषार्थ, अर्थात् यथायोग्य उद्यम को कभी कोई मत छोड़ो। जैसे (बृहद्वदेम विदथे॰) विज्ञानादि यज्ञ वा धर्मयुक्त युद्धों में

'सुवीराः' अत्यन्त शूरवीर होके 'बृहत्' (सबसे बड़े) आप जो परब्रह्म उन (वदेम) आप की स्तुति, आप का उपदेश, आप की प्रार्थना और उपासना, तथा आपका यहा बड़ा अखण्ड साम्राज्य और सब मनुष्यों का हित सर्वदा कहें-सुनें, और आपके अनुग्रह से परमानन्द को भोगें ।।५३।।[१]

ओम् महाराजाधिराजाय परमात्मने नमो नमः ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां महाविदुषां श्रीयुतविरजानन्द सरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचित 'आर्याभिविनये' प्रथमः प्रकाशः पूर्तिमागमत् ॥

॥ समाप्तोऽयं प्रथमः प्रकाशः ॥

॥ ओ३म् ॥

तत्सत्परमात्मने नमः

अथ द्वितीयः प्रकाशः

ओ३म् स॒ह ना॑ववतु स॒ह नौ॑ भुनक्तु। स॒ह वी॒र्य्यं॑ करवावहै।
ते॒ज॒स्वि ना॒वधी॑तमस्तु मा वि॑द्वि॒षा॒वहै॑।
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ १॥

—तैत्तिरीयारण्यके ब्रह्मानन्दवल्ली प्रपा० १०। प्रथमानुवाकः १॥

व्याख्यान—हे सहनशीलेश्वर! [(सह नाववतु)] आप और हम लोग परस्पर प्रसन्नता से रक्षक हों। आप की कृपा से हम लोग सदैव आप की ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें। तथा आप को ही पिता, माता, बन्धु, राजा, स्वामी, सहायक, सुखद, सुहृद् परमगुर्वादि जानें। क्षणमात्र भी आपको भूल कर न रहें। आपके तुल्य वा अधिक किसी को कभी न जानें। आपके अनुग्रह से हम सब लोग परस्पर प्रीतिमान्, रक्षक, सहायक, परम परुषार्थी हों। एक दूसरे का दुःख न देख सकें। स्वदेशस्थादि मनुष्यों को अत्यन्त परस्पर निर्वैर, प्रीतिमान् पाखण्ड रहित करें।

(सह नौ भनुक्त) तथा आप और हम लोग परस्पर परमानन्द का भोग करें। हम लोग परस्पर हित से आनन्द भोगें, कि आप हमको अपने अनन्त परमानन्द के भागी करें। उस आनन्द से हम लोगों को क्षणमात्र भी अलग न रक्खे।

(सह वीर्यं करवावहै) आप के सहाय से परम वीर्य जो सत्यविद्यादि उस को परस्पर परम पुरुषार्थ से प्राप्त करें।

(तेजस्वि नावधीतमस्तु) हे अनन्त विद्यामय भगवन्! आप की कृपादृष्टि से हम लोगों का पठन-पाठन परमविद्यायुक्त हो। और संसार में सब से अधिक प्रकाशित हो, और अन्योन्य प्रीति से परम वीर्य पराक्रम से निष्कण्टक चक्रवर्ती राज्य भोगें। हममें सब नीतिमान् सज्जन पुरुष हों, और आप हम लोगों पर अत्यन्त कृपा करें कि हम लोग नाना पाखण्ड, असत्य, वेदविरुद्ध मतों को शीघ्र छोड़के एक सत्यसनातनमतस्थ हों, जिससे सब विद्वेष के मूल जो पाखण्ड मत, वे सब सद्यः प्रलय

को प्राप्त हों।

(मा विद्विषावहै) और हे जगदीश्वर! आप के सामर्थ्य से हम लोगों में परस्पर विद्वेष, विरोध अर्थात् अप्रीति न रहे। तथा हम लोग कभी परस्पर विद्वेष, विरोध न करें। किन्तु (सब) हम लोग तन-मन-धन-विद्या इनको परस्पर सब के सुखोपकार में परम प्रीति से लगावें।

(ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः) हे भगवन्! तीन प्रकार के सन्ताप जगत् में हैं एक 'आध्यात्मिक' (शारीरिक) जो ज्वारादि पीड़ा होने से होता है। दूसरा 'आधिभौतिक' ताप-जो शत्रु, सर्प, व्याघ्र, चौरादिकों से सन्ताप होता है। और तीसरा-जो मन, इन्द्रिय, अग्नि, वायु, अतिवृष्ट अनावृष्टि, अतिशीत, अत्युष्णता इत्यादि से होता है, सो 'आधिदैविक' ताप हैं। हे कृपासागर! आप इन तीनों तापों की शीघ्र निवृत्ति करे। जिससे हम लोग अत्यानन्द में और आपकी अखण्ड उपासना में सदा रहें।

हे विश्वगुरो! मुझको असत् (मिथ्या) और अनित्य पदार्थ तथा असत् काम से छुड़ाके, सत्य तथा नित्य पदार्थ और श्रेष्ठ व्यवहार में स्थिर कर। हे जगन्मङ्गलमय! (सर्वदुःखेभ्यो मोचयित्वा सर्वसुखानि प्रापय) सब दुःखों से मुझको छुड़ाके, सब सुखों को प्राप्त कर। (हे प्रजापते! सुप्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन परमैश्वर्येण संयोजय) हे प्रजापते! मुझको अच्छी प्रजा-पुत्रादि, हस्त्यश्वगवादि उत्तम पशु, सर्वोत्कृष्ट विद्या और चक्रवर्ती राज्यादि परमैश्वर्य, जो स्थिर परमसुखकारक, उसको शीघ्र प्राप्त कर। हे परमवैद्य! (सर्वरोगात् पृथक्कृत्य नैरोग्यं देहि) सर्वथा मुझको सब रोगों से छुड़ाके परम नैरोग्य दे। हे महाराजाधिराज! [(मनसा वाचा कर्मणा अज्ञानेन प्रमादेन वा यद्यत्पापं कृतं मया तत्तत्सर्वं कृपया क्षमस्व, ज्ञानपूर्वकपापकरणान्निवर्तय माम्) मन से, वाणी से और कर्म से, अज्ञान वा प्रमाद से जो पाप किया हो, किंवा करने का हो, उस-उस मेरे पाप को क्षमा कर। और ज्ञानपूर्वक पाप करने से भी मुझको रोक दे], जिससे मैं शुद्ध होके आप की सेवा में स्थिर होऊँ। (हे न्यायाधीश! कुकामकुलोभकुमोहभयशोकालस्येर्ष्याद्वेषप्रमादविषयतृष्णानैष्ठुर्याभिमानदुष्टभावाविद्याभ्यो निवारय, एतेभ्यो विरुद्धेषूत्तमेषु गुणेषु संस्थापय माम्) हे ईश्वर! कुकाम, कुलोभादि, पूर्वोक्त दुष्ट दोषों को स्वकृपा से छुड़ाके श्रेष्ठ काम आदि में यथावत्

मुझको स्थिर कर। मैं अत्यन्त दीन होके यही माँगता हूँ कि मैं आप और आपकी आज्ञा से भिन्न पदार्थ में कभी प्रीति न करूँ। हे प्राणपते, प्राणप्रिय, प्राणपितः, प्राणाधार, प्राणजीवन, स्वराज्यप्रद! मेरे प्राणपति आदि आप ही हो। मेरा सहायक आपके सिवाय कोई नहीं। हे राजाधिराज! जैसा सत्य न्याययुक्त, अखण्डित आपका राज्य है, वैसा न्यायराज्य हम लोगों का भी आप की ओर से स्थिर हो। आपके राज्य के अधिकारी किङ्कर अपने कृपाकटाक्ष से हमको शीघ्र ही कर। हे न्यायप्रिय! हमको भी न्यायप्रिय यथावत् कर। हे धर्माधीश! हमको धर्म में स्थिर रख। हे करुणामय पिता! जैसे माता और पिता अपने सन्तानों का पालन करते हैं, वैसे ही आप हमारा पालन करो।।१।।

स्तुति-विषयः

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छा-
श्वतीभ्यः समाभ्यः।।२ —यजुर्वेद अध्याय ४०। मन्त्र ८

व्याख्यान—(सः पर्यगात्) वह परमात्मा आकाश के समान सब जगह में परिपूर्ण (व्यापक) है। (शुक्रम्) सब जगत् का करनेवाला वही है। (अकायम्) और वह कभी शरीर (अवतार) नहीं धारण करता। वह अखण्ड और अनन्त निर्विकार होने से देह धारण कभी नहीं करता। उससे अधिक कोई पदार्थ नहीं है। इससे ईश्वर का शरीर धारण करना कभी नहीं बन सकता। (अव्रणम्) वह अखण्डैकरस, अच्छेद्य, अभेद्य, निष्कम्प और अचल है। इससे अंशांशिभाव भी उसमें नहीं है। क्योंकि उसमें छिद्र किसी प्रकार से नहीं हो सकता। (अस्नाविरम्) नाड़ी आदि का प्रतिबन्ध (निरोध) भी उसका नहीं हो सकता। अतिसूक्ष्म होने से ईश्वर को कोई आवरण नहीं हो सकता। (शुद्धम्) वह परमात्मा सदैव निर्मल, अविद्यादि, जन्म-मरण, हर्ष-शोक, क्षुधातृषादि दोषोपाधियों से रहित है। शुद्ध की उपासना करनेवाला शुद्ध ही होता है, और मलिन का उपासक मलिन ही होता है। (अपापविद्धम्) परमात्मा कभी अन्याय नहीं करता, क्योंकि वह सदैव न्यायकारी ही है। (कविः) त्रैकालज्ञ (सर्ववित्), महाविद्वान्, जिसकी विद्या का अन्त कोई कभी नहीं ले-सकता। (मनीषी) सब जीवों के मन (विज्ञान) का साक्षी, सबके मन का दमन करनेवाला है। (परिभूः) सब दिशाओं और सब जगह में परिपूर्ण हो रहा है, सबके ऊपर विराजमान है। (स्वयम्भूः)

जिसका आदिकारण माता-पिता उत्पादक कोई नहीं, किन्तु वही सब का आदिकारणादि है। (याथातथ्यतोर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः) उस ईश्वर ने अपनी प्रजा को यथावत् सत्य, सत्यविद्या जो चार वेद उनका सब मनुष्यों के परमहितार्थ उपदेश किया है। उस हमारे दयामय पिता परमेश्वर ने बड़ी कृपा से अविद्यान्धकार का नाशक-वेदविद्यारूप सूर्य प्रकशित किया है। और सबका आदिकारण परमात्मा है, ऐसा अवश्य मानना चाहिए। एवं विद्या-पुस्तक का भी आदिकरण ईश्वर को निश्चित मानना चाहिए। विद्या का उपदेश ईश्वर ने अपनी कृपा से किया है। क्योंकि हम लोगों के लिए [उसने] सब पदार्थों का दान किया है, तो विद्या-दान क्यों न करेगा? सर्वोत्कृष्ट विद्या-पदार्थ का दान परमात्मा ने अवश्य किया है, तो वेद के विना अन्य कोई पुस्तक संसार में ईश्वरोक्त नहीं है। जैसा पूर्ण विद्यावान् और न्यायकारी ईश्वर है, वैसे ही वेद-पुस्तक भी है। अन्य कोई पुस्तक ईश्वरकृत, वेद-तुल्य वा अधिक नहीं है। अधिक विचार इस विषय का अधिक वचार इस विषय का 'सत्यार्थ-प्रकाश' मेरे किये ग्रन्थ में देख लेना।।२।।

प्रार्थना-विषयः

दृते॒दृꣳह॑ मा मि॒त्रस्य॑ मा॒ चक्षु॑षा सर्वा॑णि भू॒तानि॒ समी॑क्षन्ताम्।
मि॒त्रस्या॒हं चक्षु॑षा सर्वा॑णि भू॒तानि॒ समी॑क्षे।
मि॒त्रस्य॒ चक्षु॑षा समी॑क्षामहे॥३॥ —यजुः० ३६। १८

व्याख्यान—हे अनन्तबल महावीर ईश्वर! (दृते) हे दुष्टस्वभावनाशक! विदीर्ण कर्म अर्थात् विज्ञानादि शुभ गुणों का नाशकर्म करनेवाला मुझको मत रक्खो (स्थिर मत करो), किन्तु उससे मेरे आत्मादि को उठाके विद्या, सत्यधर्मादि शुभ गुणों में सदैव स्वकृपासामर्थ्य ही से स्थिर करो (दृꣳह मा) हे परमैश्वर्यवन् भगवन्! धर्मार्थकाममोक्षादि तथा विद्या विज्ञानादि दान से अत्यन्त मुझको बढ़ा। (मित्रस्येत्यादि०) हे सर्वसुहृदीश्वर, सर्वान्तर्यामिन्! सब भूत प्राणिमात्र मित्र की दृष्टि से यथावत् मुझको देखें। सब मेरे मित्र ही हो जाये, कोई मुझ से किञ्चिन्मात्र भी वैरदृष्टि न करे। (मित्रस्याहं चेत्यादि) हे परमात्मन्! आपकी कृपा से मैं भी निर्वैर होके सब भूत प्राणी और अप्राणी चराचर जगत् को मित्र की दृष्टि से स्वआत्म-स्वाप्राणवत् प्रिय जानूँ। अर्थात् (मित्रस्य चक्षुषेत्यादि) पक्षपात छोड़के सब जीव देहधारीमात्र

अत्यन्त प्रेम से परस्पर वर्तमान करें। अन्याय से युक्त होके किसी पर कभी हम लोग न वर्त्तें। इस परम धर्म का सब मनुष्यों के लिए परमात्मा ने उपदेश किया है। सबको यही मान्य होने योग्य है।।३।।

स्तुति-विषयः

तदे॒वाग्निस्तदा॑दि॒त्यस्तद्वा॒युस्तदु॒ च॒न्द्रमा॑: ।
तदे॒व शु॒क्रं तद् ब्रह्म॒ ताऽआप॒: स प्र॒जाप॑तिः ॥४॥ —यजुः० ३२। १

व्याख्यान— जो सब जगत् का कारण एक परमेश्वर है, [(तदेवाग्नि)] उसी का नाम 'अग्नि' है, "ब्रह्म ह्यग्निः" शतपथे। सर्वोत्तम, ज्ञानस्वरूप और जानने के योग्य, प्रापणीयस्वरूप और पूज्यतमेत्यादि 'अग्नि' शब्द के अर्थ है। "आदित्यो वै ब्रह्म, वायुर्वै ब्रह्म, चन्द्रमा वै ब्रह्म, शुक्रं हि ब्रह्म, सर्वजगकर्त्तृ ब्रह्म, ब्रह्म वै बृहत्, आपो वै ब्रह्म" इत्यादि शतपथ तथा ऐतरेय ब्राह्मण के प्रमाण हैं। (तदादित्यः) जिसका कभी नाश न हो, और स्वप्रकाशस्वरूप हो, इससे परमात्मा का नाम 'आदित्य' है। (तद्वायुः) सब जगत् का धारण करनेवाला, अनन्त बलवान्, प्राणों से भी जो प्रियस्वरूप है, इससे ईश्वर का नाम 'वायु' है। पूर्वोक्त प्रमाण से (तदु चन्द्रमाः) जो आनन्दस्वरूप और स्वसेवकों को परमानन्द देनेवाला है, इससे पूर्वोक्त प्रकार से 'चन्द्रमा' परमात्मा को जानना। (तदेव शुक्रम्) वही चेतनस्वरूप ब्रह्म सब जगत् का कर्त्ता है। (तद् ब्रह्म) सो अनन्त, चेतन सब से बड़ा है, और धर्मात्मा स्वभक्तों को अत्यन्त सुख विद्यादि सद्गुणों से बढ़ानेवाला है। (ता आपः) उसी को सर्वत्र, चेतन, सर्वत्र व्याप्त होने से 'आपः' नामक जानना। (सः प्रजापतिः) सो ही सब जगत् का पति (स्वामी) और पालन करनेवाला है, अन्य कोई नहीं। उसी को हम लोग इष्टदेव तथा पालक मानें, अन्य को नहीं ।।४।।

प्रार्थना-विषयः

ऋचं॒ वाचं॒ प्र प॑द्ये॒ मनो॒ यजु॒: प्र प॑द्ये॒ साम॑ प्रा॒णं प्र प॑द्ये॒ चक्षु॒: श्रोत्रं॒ प्र प॑द्ये।
वागोज॑: स॒हौज॒ो मयि॑ प्राणापा॒नौ ॥५॥ —यजुः० ३६। १०

व्याख्यान— हे करुणाकर परमात्मन्! आपकी कृपा से मैं [(ऋचं वाचं प्रपद्ये)] ऋग्वेदादिज्ञानयुक्त (श्रवणयुक्त) होके उसका वक्ता होऊँ। [(मनो यजुः प्रपद्ये)] यजुर्वेदाभिप्रायार्थसहित सत्यार्थ मननयुक्त मन को प्राप्त होऊँ। [(साम

प्राणं०)] ऐसे ही सामवेदार्थनिश्चय, निदिध्यान सहित प्राण को सदैव प्राप्त होऊँ। (वागोजः) वाग्बल, वक्तृत्वबल, मनोविज्ञानबल मुझको आप देवें। अन्तर्यामी की कृपा से मैं यथावत् प्राप्त होऊँ। (सहौजः) शरीरबल, नैरोग्य-दृढ़त्वादिगुणयुक्त को मैं आप के आनुग्रह से सदैव प्राप्त होऊँ। (मयि प्राणापानौ) हे सर्वजगज्जीवनाधार! प्राण (जिससे कि ऊर्ध्व चेष्टा होती है) और अपान (अर्थात् जिससे नीचे की चेष्टा होती है) ये दोनों मेरे शरीर में सब इन्द्रिय, सब धातुओं की शुद्धि करनेवाले, तथा नैरोग्य बल, पुष्टी, सरलगति करनेवाले, स्थिर आयुवर्धक [और] मर्मरक्षक हो। उनके अनुकूल प्राणादि को प्राप्त होके आपकी कृपा से हे ईश्वर! सदैव सुखी होके आपकी आज्ञा और उपासना में [मैं] तत्पर रहूँ ।।५।।

स्तुति-विषयः

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥६॥–यजुः० ३२।१

व्याख्यान–[(स नः)] वह परमेश्वर हमारा (बन्धुः) दुःखनाशक और सहायक है। तथा (जनिता) सब जगत् तथा हम लोगों का भी पालन करनेवाला पिता, तथा हम लोगों के कामों की सिद्धि का, (विधाता) पूर्ण कामों की सिद्धि करनेवाला वही है। सब जगत् का भी विधाता (रचने और धारण करनेवाला एक परमात्मा ही है, अन्य कोई नहीं।) (धामानि वेद भुवनानि विश्वा) सब धाम अर्थात् अनेक लोक-लोकान्तरों को रचके अनन्त सर्वज्ञता से यथार्थ जानता है। [(यत्र देवा अमृतमानशानाः)] वह कौन परमेश्वर है? कि जिससे 'देव' अर्थात् विद्वान् लोग 'विद्वाꣳसो हि देवाः' शतपथ ब्रा०', अमृत= मरणादिदुःखरहित मोक्षपद में सब दुःखों से छूटके सर्वव्यापी पूर्णानदस्वरूप परमात्मा को प्राप्त होके परमानन्द में सदैव रहते हैं। (तृतीय धामन्) एक स्थूल जगत् (पृथिव्यादि), दूसरा सूक्ष्म=आदिकारण, तीसरा जो सर्वदोषरहित अनन्तानन्दस्वरूप परब्रह्म, उस धाम में (अध्यैरयन्त) धर्मात्मा, विद्वान् लोग स्वच्छन्द= स्वेच्छा से वर्त्तते हैं। सब बाधाओं से छूटके विज्ञानवान् शुद्ध होके देश-काल-वस्तु का परिच्छेदरहित सर्वगत 'धामन्' आधारस्वरूप परमात्मा में सदा रहते हैं। उससे जन्म-मरणादिदुःखसागर में कभी नहीं गिरते ।।६।।

प्रार्थना-विषयः

यतो॑यतः स॒मीह॑से॒ ततो॑ नो॒ऽ अभ॑यं कुरु।
शं न॑: कुरु प्र॒जाभ्यो॒ऽभ॑यं नः प॒शुभ्य॑: ॥७॥ —यजुः० ३६। २२

व्याख्यान—हे परमेश्वर! दयालो! [(यतो यतः)] जिस—जिस देश से आप (समीहसे) सम्यक् चेष्टा करते हो, [(ततो नो अभयं कुरू)] उस-उस देश से हमको अभय करो। अर्थात् जहाँ-जहाँ से हमको भय प्राप्त होने लगे, वहाँ-वहाँ से सर्वथा हम लोगों को अभय (भयरहित) करो [(शं नः कुरू॰)] तथा प्रजा से हमको सुख करो। हमारी प्रजा सब दिन सुखी रहे। भय देनेवाली कभी न हो। तथा पशुओं से भी हमको अभय करो। किञ्च किसी से किसी प्रकार का भय हम लोगों को आप की कृपा से कभी न हो। जिससे हम लोग निभर्य होके सदैव परमानन्द को भोगें, और निरन्तर आपका राज्य। तथा आपकी भक्ति करें ॥७॥

स्तुति-विषयः

वेदा॒हमे॒तं पु॑रु॒षं म॒हान्त॑मादि॒त्यव॑र्णं॒ तम॑सः प॒रस्ता॑त् ।
तमे॒व वि॑दि॒त्वाति॑ मृ॒त्युमे॑ति॒ नान्यः पन्था॑ विद्य॒तेऽय॑नाय ॥८॥
—यजुः० ३१। १८

व्याख्यान—[(वेदाहमहेतं पुरुषम्)] सहस्त्रशीर्षादि विशेषणोक्त पुरुष सर्वत्र परिपूर्ण (पूर्णत्वात् पुरिशयनाद्वा पुरुष इति निरुक्तोक्तेः) है, उस पुरुष को मैं जानता हूँ। अर्थात् सब मनुष्यों को उचित है कि उस परमात्मा को अवश्य जानें, उसको कभी न भूलें। अन्य किसी को ईश्वर न जानें। वह कैसा है? कि (महान्तम्) बड़ों से भी बड़ा, उससे बड़ा वा तुल्य कोई नहीं है। (आदित्यवर्णम्) आदित्यादि का रचक और प्रकाशक वही एक परमात्मा है, तथा वह सदा स्वप्रकाशस्वरूप ही है, किंच (तमसः परस्तात्) तम जो अन्धकार=अविद्यादि दोष उस से रहित ही है। तथा स्वभक्त, धर्मात्मा सत्यप्रेमी जनों को भी अविद्यादि-दोषरहित सद्यः करनेवाला वही परमात्मा है। विद्वानों का ऐसा निश्चय है कि परब्रह्म के ज्ञान और उसकी कृपा के विना कोई जीव कभी सुखी नहीं होता। (तमेव विदित्वातिमृत्युमेति) उस परमात्मा को जानके ही जीव मृत्यु को उल्लंघन कर सकता है, अन्यथा नहीं। क्योंकि (नाऽन्यः पन्था विद्यतेऽयनाय) विना परमेश्वर की भक्ति और उसके ज्ञान के मुक्ति का मार्ग कोई नहीं है, ऐसी परमात्मा की दृढ़ आज्ञा है। सब मनुष्यों को इसमें ही वर्त्तना चाहिए, और

सब पाखण्ड और जंजाल अवश्य छोड़ देना चाहिए ।।८।।

प्रार्थना-विषयः

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि
बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि ।।९।। –यजुः० १०। ९

व्याख्यान–हे स्वप्रकाशस्वरूप! अनन्ततेज! [(तेजोऽसि तेजो मयि धेहि)] आप अविद्यान्धकार से रहित हो, किंच सत्यविज्ञान, तेजःस्वरूप हो। आप कृपा-दृष्टि से मुझ में वही तेज धारण करो, जिससे मैं निस्तेज दीन और भीरु कहीं कभी न होऊं। हे अनन्तवीर्य परमात्मन्! [(वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि)] आप वीर्यस्वरूप हो [(मुझ में भी वही वीर्य सदा धारण करो)] हे अनन्तबल! [(बलमसि बलं मयि धेहि)] आप बलस्वरूप हो,] वह सर्वोत्तम बल स्थिर मुझ में भी रक्खें। हे अनन्तपराक्रम! [(ओजोऽस्योजो मयि धेहि)] आप ओजः=पराक्रमस्वरूप हो, सो मुझमें भी उस पराक्रम को सदैव धारण करो। हे दुष्टानामुपरि क्रोधकृत्! [(मन्युरसि मन्युं मयि धेहि)] आप दुष्टों पर क्रोध करनेवाले हो] मुझ में भी दुष्टों पर क्रोध धारण कराओ। [(सहोऽसि सहो मयि धेहि] हे अनन्तसहनस्वरूप! मुझ में भी आप सहनसामर्थ्य धारण करो, अर्थात् शरीर इन्द्रिय मन और आत्मा इनके तेजादि गुण कभी मुझ में से दूर न हों। जिससे मैं आपकी भक्ति का स्थिर अनुष्ठान करूँ, और आपके अनुग्रह से संसार में भी सदा सुखी रहूँ ।।९।।

स्तुति-विषयः

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च ।
उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि सं विवेश ।।१०।।

–यजुः ३२। ११

व्याख्यान–[(परीत्य भूतानि)] सब भूत आकाश और प्रकृति से लेके पृथिवीपर्यन्त सब संसार में वह परमेश्वर व्याप्त होके पूर्ण भर रहा है। [(परीत्य लोकान्..... दिशश्च)] तथा सब लोक, सब पूर्वादि दिशा और ऐशान्यादि उपदिशा ऊपर नीचे अर्थात् एक कण भी उनके विना खाली नहीं। (प्रथमजाम्) प्रथमोत्पन्न जीव=सब संसार को ही समझना। सो जीव आदि अपने आत्मा से अत्यन्त सत्याचरण

विद्या श्रद्धा भक्ति से (ऋतस्य) यथार्थ सत्यस्वरूप परमात्मा को (उपस्थाय) यथावत् जानके उपस्थित=निकट प्राप्त (अभिसंविवेश) अभिमुख होके उसमें प्रविष्ट अर्थात् परमानन्दस्वरूप परमात्मा में प्रवेश करके सब दुःखों से छूटके सदैव उसी परमानन्द में रहता है ॥१०॥

प्रार्थना-विषयः

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र नो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥११॥

—यजुः० ३४। ३६

व्याख्यान—हे भगवान परमैश्वर्यवन्! (भग) ऐश्वर्य के दाता संसार वा परमार्थ में आप ही हो। तथा (भग प्रणेतः) आपके ही स्वाधीन सकल ऐश्वर्य है, अन्य किसी के अधीन नहीं। आप जिसको चाहो उसको ऐश्वर्य देओ। सो आप कृपा से हम लोगों का दारिद्र्य छेदन करके हमको परमैश्वर्यवाले करें, क्योंकि ऐश्वर्य के प्रेरक आप ही हो। हे भगवन्! (सत्यराधः) सत्यैश्वर्य की सिद्धि करनेवाले आप ही हो, सो आप नित्य ऐश्वर्य हम को दीजिए। [तथा] जो मोक्ष कहलाता है, उस सत्य ऐश्वर्य का दाता आपसे भिन्न कोई नहीं है। [(भगेमां धियं ददन्नः)] हे सत्यभग! पूर्ण ऐश्वर्य सर्वोत्तम बुद्धि हम को आप दीजिए। जिस से हम लोग आप, आपके गुण और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान ज्ञान इनको यथावत् प्राप्त हों। सो हमको सत्यबुद्धि सत्यकर्म और सत्यगुणों को (उदव) उद्गमय=प्रापय=प्राप्त कर। जिससे हम लोग सूक्ष्म से भी सूक्ष्म पदार्थों को यथावत् जानें। (भग प्र नो जनय) हे सर्वैश्वर्योत्पादक! हमारे लिए भग=ऐश्वर्य को अच्छी प्रकार से उत्पन्न कर। [(गोभिरश्वैः)] सर्वोत्तम गाय घोड़े और मनुष्य इनसे सहित अनुत्तम=अत्युत्तम ऐश्वर्य हमको सदा के लिए दीजिए। हे सर्वशक्तिमन्! [(भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम)] आपके कृपाकटाक्ष से सब दिन हम लोग उत्तम-उत्तम पुरुष, स्त्री और सन्तान, भृत्यवाले हों। आपसे हमारी अधिक यही प्रार्थना है कि कोई मनुष्य हममें दुष्ट और मूर्ख न रहे, तथा न पैदा हो। जिससे हम लोगों की सर्वत्र सत्कीर्ति हो, और निन्दा कभी न हो ॥११॥

स्तुति-विषयः

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके ।

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥१२॥–यजु:० ४०। ५॥

व्याख्यान–(तद्=ब्रह्म एजति) वह परमात्मा सब जगत् को यथायोग्य अपनी-अपनी चाल पर चला रहा है। सो अविद्वान् लोग ईश्वर में भी आरोप करते हैं कि वह भी चलता होगा? परन्तु वह सब में पूर्ण है, कभी चलायमान नहीं होता। अत एव (तन्नैजजि) यह प्रमाण है। स्वतः वह परमात्मा कभी नहीं चलता, एकरस निश्चल होके भरा है। विद्वान् लोग इसी रीति से ब्रह्म को जानते हैं। (तद् दूरे) अधर्मात्मा अविद्वान् विचारशून्य अजितेन्द्रिय ईश्वरभक्ति-रहित इत्यादि दोषयुक्त मनुष्यों से वह ईश्वर बहुत दूर है। अर्थात् वे कोटि-कोटि वर्ष तक उसको नहीं प्राप्त होते। इससे वे तब तक जन्म-मरणादि दुःखसागर में इधर-उधर घूमते फिरते हैं कि जब तक उसको नहीं जानते। (तद्वन्तिके) सत्यवादी, सत्यकारी, सत्यमानी, जितेन्द्रिय, सर्वजनोपकारक विद्वान् विचारशील पुरुषों के (अन्तिके) अत्यन्त निकट है। [(तदन्तरस्य ब्राह्मतः)] किंच वह सब के आत्माओं के बीच में अन्तर्यामी व्यापक होके सर्वत्र पूर्ण भर रहा है। सो आत्मा का भी आत्मा है। क्योंकि परमेश्वर सब जगत् के भीतर और बाहर तथा मध्य अर्थात् एक तिलमात्र भी उसके विना खाली नहीं है। वह अखण्डैकरस सब में व्याप हो रहा है। उसी को जानने से ही सुख और मुक्ति होती है, अन्यथा नहीं ॥१२॥

प्रार्थना-विषय

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬं
श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां, मनो यज्ञेन कल्पता-
मात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन
कल्पताᳬं स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन
कल्पताम्। स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च
रथन्तरं च। स्वर्देवाऽअगन्मामृताऽ अभूम प्रजापतेः प्रजाऽ
अभूम वेट् स्वाहा॥१३॥ –यजु:० १८। २१

व्याख्यान–"यज्ञो वै विष्णुः, यज्ञो वै ब्रह्म" (इत्याद्यैतरेयशतपथब्राह्मणश्रुतेः) यज्ञ (यजनीय) जो सब मनुष्यों का पूज्य इष्टदेव परमेश्वर उसके हेतु-उसके अर्थ तथा उसके संग अतिश्रद्धा से [यज्ञ जो परमात्मा उसके लिये] सब मनुष्य सर्वस्व

समर्पण यथावत् करें। यही इस मन्त्र में उपदेश और प्रार्थना है। कि-हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर! जो यह आपकी आज्ञा है कि 'सब लोग सब पदार्थ मेरे अर्पण करें', इस कारण हम लोग (आयुः) उमर, प्राण, चक्षु (आँख), कान, वाणी, मन, (आत्मा) जीव (ब्रह्मा) तथा वेदविद्या और विद्वान् [(ज्योतीः)] ज्योतिः (सूर्यादिलोक तथा अग्न्यादि पदार्थ) तथा [(स्वः)] स्वर्ग (सुखसाधन), [(पृष्ठम्)] पृष्ठ (पृथिव्यादि सब लोक आधार तथा पुरुषार्थ) [(यज्ञः)] यज्ञ (जो-जो अच्छा काम हम लोग करते हैं) (स्तोम) स्तुति, [(यजुश्च॰)] यजुर्वेद, ऋग्वेद, सामवेद, चकार से अथर्ववेद, बृहद्रथन्तर महारथन्तर साम इत्यादि सब पदार्थ आप के समर्पण करते हैं। हम लोग तो केवल आप के ही शरण हैं। जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा हमारे लिए आप कीजिए। परन्तु हम लोग आपके सन्तान आपकी कृपा से (स्वरगन्म) उत्तम सुख को प्राप्त हों। जब तक जीवें, तब तक सदा चक्रवर्ती राज्यादि भोग से सुखी रहें, और मरणानन्तर भी हम सुखी ही रहैं। हे महादेवतामृत! हम देव (परम विद्वान् हों) तथा [(अमृता अभूम)] अमृत (मोक्ष जो आपकी प्राप्ति) उसको प्राप्त होके जन्म-मरण-रहित अमृतस्वरूप सदैव रहें। (वेट् स्वाहा) आपकी आज्ञा-पालन आप की प्राप्ति हो, जिससे उस क्रिया में सदा तत्पर रहें। तथा जो अन्तर्यामी आप हृदय में आज्ञा करो, अर्थात् जैसा हमारे हृदय में ज्ञान हो, वैसा ही सदा भाषण करें, उससे विपरीत कभी नहीं। हे कृपानिधे! हम लोगों का योगक्षेम (सब निर्वाह आप ही सदा करो।) आप के सहाय से सर्वत्र हमको विजय और सुख मिले ॥१३॥

स्तुति-विषयः

यस्मान्न जातः परोऽ अन्योऽ अस्ति यऽ आविवेश भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतिꣳषि सचते स षोडशी ॥१४॥

-यजुः० ८। ३६

व्याख्यान-[(यस्मात्.....अस्ति)] जिससे बड़ा तुल्य वा श्रेष्ठ न हुआ, न है और न कोई कभी होगा, उसको परमात्मा कहना। जो (विश्वा भुवनानि) सब भुवन (लोक) सब पदार्थों के निवास-स्थान असंख्यात लोकों को (आविवेश) प्रविष्ट होके पूर्ण हो रहा है, [(प्रजापतिः प्रजया संरराणः)] वही ईश्वर प्रजा का पति (स्वामी) है, सब प्रजा को रमा रहा और सब प्रजा में रम रहा है। (त्रीणीत्यादि) तीन

ज्योति (अग्नि) वायु और सूर्य इनको जिसने रचा है, सब जगत् के व्यवहार और पदार्थ-विद्या की उत्पत्ति के लिए इन तीनों को मुख्य समझना, (सः षोडशी) सोलह कला जिसने उत्पन्न की हैं, इससे सोलह कलावान् ईश्वर कहाता है। वे १६ सोलह कला ये हैं—ईक्षण (विचार) १, प्राण, २, श्रद्धा ३, आकाश ४, वायु ५, अग्नि ६, जल ७, पृथिवी ८, इन्द्रिय ९, मन १०, अन्न ११, वीर्य (पराक्रम) १२, तप, (धर्मानुष्ठान) १३, मन्त्र (वेद-विद्या) १४, कर्म (चेष्टा) १५, लोक और लोकों में नाम १६—इतनी कलाओं के बीच में सब जगत् है और परमेश्वर में अनन्त कला हैं। उसकी उपासना को छोड़ के जो दूसरे की उपासना करता है वह सुख को प्राप्त कभी नहीं होता, किन्तु सदा दुःख में ही पड़ा रहता है ।।१४।।

स्तुति-विषयः

स न॑: पि॒तेव॑ सू॒नवेऽग्ने॑ सू॒पाय॒नो भ॑व। सच॑स्वा नः स्व॒स्तये॑ ।।१५।।

—यजुः० ३। २४

व्याख्यान—[(अग्ने)] ब्रह्म ह्यग्निः, इत्यादिशतपथादिप्रामाण्याद् ब्रह्मैवात्राग्निर्ग्राह्यः। हे विज्ञानस्वरूपेश्वराग्ने! आप हमारे लिए (सूपायनः) सुख से प्राप्त, श्रेष्ठोपाय के प्रापक, अनुत्तम स्थान के दाता कृपा से सर्वदा हो, तथा रक्षक भी हमारे आप ही हो। [(सचस्व नः स्वस्तये)] हे स्वस्तिदः परमात्मन्! सब दुःखों का नाश करके हमारे लिये सुख का वर्त्तमान सदैव कराओ, जिससे हमारा वर्त्तमान श्रेष्ठ ही हो। (स नः पितेव सूनवे) जैसे करुणामय पिता अपने स्वपुत्र को सुखी ही रखता है, वैसे आप हमको सदा सुखी रक्खो। क्योंकि जो हम लोग बुरे होंगे, तो उसकी शोभा आपको नहीं होना। किञ्च सन्तानों को सुधारने से ही पिता की बड़ाई होती है, अन्यथा नहीं ।।१५।।

स्तुति-विषयः

वि॒भूर॑सि प्र॒वाह॑णो वह्नि॑रसि हव्य॒वाह॑नः।
श्वा॒त्रोऽसि॑ प्रचे॒तास्तु॒थोऽसि॑ वि॒श्ववे॑दाः ।।१६।। —यजुः० ५। ३१

व्याख्यान— हे व्यापकेश्वर! [(विभूरसि प्रवाहणः)] आप विभू हो, सर्वत्र प्रकाशित वैभव ऐश्वर्ययुक्त आप ही हो, किन्तु और कोई नहीं। विभु होके सब जगत् के 'प्रवाहण' (स्वस्वनियमपूर्वक चलानेवाले) तथा सब के निर्वाहकारक भी आप

[ही] हो। हे स्वप्रकाशक सर्वरसवाहकेश्वर! [(वह्निरसि हव्यवाहनः)] आप वह्नि हैं, सब हव्य=उत्कृष्ट रसों के भेदक आकर्षक तथा यथावत् स्थापक आप ही हो। हे आत्मन्! आप (श्वात्रः) शीघ्र व्यापनशील हो। तथा [प्रचेताः] प्रकृष्ट ज्ञानस्वरूप, प्रकृष्ट ज्ञान के देनेवाले हो। हे सर्ववित्! आप (तुथः) और (विश्ववेदः) हो। 'तुथो वै ब्रह्म', यह शतपथ की श्रुति है। सब जगत् में विद्यमान प्राप्त और लाभ करानेवाले हो ॥१६॥

प्रार्थना-विषयः

उशिगसि कविरङ्घारिरसि बम्भारिरवस्यूरसि दुवस्वाञ्छुन्ध्यूरसि मार्जालीयः सम्राडसि कृशानुः।
परिष्द्योऽसि पवमानो नभोऽसि प्रतक्वा मृष्टोऽसि हव्यसूदनऽ।
ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः ॥१७॥ —यजुः०५।३२॥

व्याख्यान—हे सर्वप्रिय! आप (उशिक्) कमनीयस्वरूप [हो], अर्थात् सब लोग जिसको चाहते हैं, क्योंकि आप (कविः) पूर्ण विद्वान् हो। तथा आप (अङ्घारिः) अर्थात् स्वभक्तों का जो अघ=पाप उसके अरि=शत्रु हो, अर्थात् सर्वपापनाशक हो। तथा (बम्भारिः) स्वभक्तों और सर्व जगत् के पालन तथा धारण करनेवाले हो। (अवस्यूरसि दुवस्वान्) अन्नादि पदार्थ स्वभक्त धर्मात्माओं को देने की इच्छा सदा करते हो, तथा परिचरणीय विद्वानों से परिचरित सेवनीयतम हो। (शुन्ध्युरसि मार्जालीयः) शुद्धस्वरूप और सब जगत् के शोधक, तथा पापों को मार्जन (निवारण) करनेवाले आप ही हो। अन्य कोई नहीं। (सम्राडसि कृशानुः) सब राजाओं के महाराज, तथा कृश=दीन जनों के प्राण के सुखदाता आप ही हो। (परिष्द्योसि पवमानः) हे न्यायकारिन्! पवित्र सभास्वरूप, सभा के आज्ञापक, सभ्य, सभापति, सभाप्रिय, सभारक्षक आप ही हो, तथा पवित्रस्वरूप, पवित्रकारक, सभा से ही सुखदायक, पवित्र प्रिय आप ही हो। (नभोऽसि प्रतक्वा) हे निर्विकार! आकाशवत् आप क्षोभरहित, अतिसूक्ष्म होने से आपका नाम 'नभ' है, तथा 'प्रतक्वा' (सबके ज्ञाता) सत्यासत्यकारी जनों के कर्मों की साक्ष्य रखनेवाले कि जिसने जैसा पाप व पुण्य किया हो उसको वैसा मिले, अन्य का पुण्य वा पाप अन्य को कभी न मिले। (मृष्टोऽसि हव्यसूदनः) मृष्ट=शुद्धस्वरूप, सब पापों के मार्जक, शोधक, तथा

हव्यसूदन=मिष्ट सुगन्ध रोगनाशक पुष्टिकारक इन द्रव्यों से वायु-वृष्टि की शुद्धि करने-करानेवाले हो। अत एव सब द्रव्यों से विभागकर्त्ता आप ही हो। इससे आपका नाम 'हव्यसूदन' है। (ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः) हे भगवन्! आपका ही धाम=स्थान सर्वगत सत्य और यथार्थ (सत्य) व्यवहार में ही आप निवास करते हो, मिथ्या में नहीं। स्वः=आप सुखस्वरूप और सुखकारक हो, तथा ज्योतिः=स्वप्रकाशक और सब के प्रकाश आप ही हो ॥१७॥

प्रार्थना-विषयः

समुद्रोऽसि विश्वव्यचऽ अजोऽस्येकपादहिरसि बुध्न्यो वागस्यैन्द्रमसि सदोऽसिस्यृतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तमध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात् ॥१८॥ -यजुः० ५। ३३

व्याख्यान-(समुद्रोऽसि विश्वव्यचाः) हे द्रवणीयस्वरूप! सब भूतमात्र आप ही में द्रवै हैं, क्योंकि कार्य कारण में ही मिले हैं। आप सब के कारण हो, तथा [आपने] व्याज=सहज से सब जगत् को विस्तृत किया है, इससे आप 'विश्वव्यचाः' हैं। (अजोऽस्येकपात्) आपका जन्म कभी नहीं होता, और यह सब जगत् आपके किञ्चिन्मात्र एकदेश में है, आप अनन्त हो। (अहिरसि बुध्न्यः) आपकी हीनता कभी नहीं होती, तथा सब जगत् के मूलकारण और अन्तरिक्ष में भी सदा आप ही पूर्ण रहते हो। (वागस्यैन्द्रमसि सदोऽसि) सब शास्त्र के उपदेशक, अनन्त विद्यास्वरूप होने से आप 'वाक्' हो। परमैश्वर्यस्वरूप सब विद्वानों में अत्यन्त शोभायमान होने से आप 'ऐन्द्र' हो। सब संसार आप में ठहर रहा है, इससे आप 'सदः' सभास्वरूप हो। (ऋतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तम्) सत्यविद्या और धर्म ये दोनों मोक्षस्वरूप आप की प्राप्ति के द्वार हैं, उनको सन्तापयुक्त हम लोगों के लिए कभी मत रक्खो, किन्तु सुखस्वरूप ही खुलें रक्खो। जिससे हम लोग सहज से आपको प्राप्त हों। (अध्वनामित्यादि) हे अध्वपते! परमार्थ और व्यवहार मार्गों में मुझको कहीं क्लेश मत होने दो। [(स्वस्ति.....भूयात्)] किन्तु उन मार्गों में मुझको स्वस्ति (आनन्द) ही आपकी कृपा से रहे। किसी प्रकार का दुःख हमको न रहे ॥१८॥

स्तुति-विषयः

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि।

पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमस्यात्मकृतस्यैनसोऽवयजनमस्येनस एनसऽएनसोऽवयजनमसि। यच्चाहमेनो विद्वाँश्चकार। यच्चाविद्वाँस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि ॥१९॥ –यजुः० ८। १३

व्याख्यान–हे सर्वपापप्रणाशक! (देवकृत०) इन्द्रिय, विद्वान् और दिव्यगुणयुक्त जन के किये पापों के नाशक आप एक ही हो, अन्य कोई नहीं। (मनुष्यकृत०) एवं मनुष्य (मध्यस्थजन), पितृ (परमविद्यायुक्त जन) और (आत्मकृत०) जीव के पापों, तथा (एनस-एनसः) पापों से भी बड़े पापों से आप ही 'अवयजन' हो, अर्थात् सर्वपापरहित हो, और हम सब मनुष्यों के भी पाप दूर करनेवाले एक आप ही दयामय पिता हो। हे महानन्तविद्य! (यच्चाहमेनः) जो-जो मैंने विद्वान् वा अविद्वान् होके पाप किया हो, उन सब पापो का छुड़ानेवाला आप के विना कोई भी इस संसार में हमारा शरण नहीं है। इससे हमारे अविद्यादि सब पाप छुड़ा के शीघ्र हमको शुद्ध करो ।।१९।।

स्तुति-विषयः

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽ आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२०॥

–यजुः० १३। ४

व्याख्यान–[(हिरण्यगर्भः०)] जब सृष्टि नहीं हुई थी, तब एक अद्वितीय 'हिरण्यगर्भ' (जो सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों का गर्भ नाम उत्पत्तिस्थान उत्पादक है) सो ही प्रथम था। (भूतस्य०) वह सब जगत् का सनातन प्रादुर्भूत प्रसिद्ध पति है। (सः दाधार०) वही परमात्मा पृथिवी से लेके प्रकृति-पर्यन्त जगत् को रचके धारण करता है, (कस्मै०) (प्रजापतये, कः प्रजापतिः, प्रजापतिर्वै कः तस्मै देवाय (शतपथे)। प्रजापति जो परमात्मा उसकी पूजा आत्मादि पदार्थों के समर्पण से यथावत् करें। उससे भिन्न की उपासना लेशमात्र भी हम लोग न करें। जो परमात्मा को छोड़के वा उसके स्थान में दूसरे की पूजा करता है, उसकी और उस देश भर की दुर्दशा अत्यन्त होती है, यह बात यह प्रसिद्ध है। इससे चेतो मनुष्यो! जो तुमको सुख की इच्छा हो, तो एक निराकार परमात्मा की यथावत् भक्ति करो। अन्यथा तुमको कभी सुख न होगा ।।२०।।

प्रार्थना-विषयः

इन्द्रो विश्वस्य राजति।

शं नोऽ अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥२१॥ —यजुः० ३६। ८

व्याख्यान—[(इन्द्रो०)] हे इन्द्र! आप परमैश्वर्य-युक्त सब संसार के राजा हो, सर्वप्रकाशक हो। हे रक्षक! आप कृपा से [(नः)] हम लोगों के (द्विपदे) जो पुत्रादि उनके लिये परमसुखदायक हो। तथा (चतुष्पदे) हस्ती, अश्व और गवादि पशुओं के लिए भी परमसुखकारक हो। जिस से हम लोगों को सादा आनन्द ही रहे ॥२१॥

प्रार्थना-विषयः

शं नो वातः पवताꣳ शं नस्तपतु सूर्यः।

शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽ अभि वर्षतु॥२२॥ —यजुः० ३६। १०

व्याख्यान—हे सर्वनियतः! [(शं नः वातः०)] हमारे लिए सुखकारक, सुगन्ध, शीतल और मन्द-मन्द वायु सदैव चले। [(शं नस्तपतु०)] एवं सूर्य भी सुखकारक ही तपे। [(शं नः कनिक०)] तथा मेघ भी सुख का शब्द लिए अर्थात् गर्जनपूर्वक सदैव काल-काल में सुखकारक वर्षे। जिससे आपके कृपापात्र हम लोग सुखानन्द ही में सदा रहें॥२२॥

प्रार्थना-विषयः

अहानि शं भवन्तु नः शꣳ रात्रीः प्रति धीयताम्।

शं नऽ इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं नऽ इन्द्रावरुणा रातहव्या।

शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ॥२३॥

—यजुः० ३६। ११

व्याख्यान—हे क्षणादिकालपते! [(अहानि शं०)] सब दिवस आपके नियम से सुखरूप ही हमको हों। [(शम् रात्रीः०)] हमारे लिये सर्व रात्रि भी आनन्द से बीतें। हे भगवन्! दिन और रात्रियों को सुखकारक ही आप धारण करो। जिससे सब समय में हम लोग सुखी ही रहें। हे सर्वस्वामिन्! (इन्द्राग्नी) सूर्य तथा अग्नि ये दोनों हमको आपके अनुग्रह से और नानाविध रक्षाओं से सुखकारक हों। (इन्द्रावरुणा रातहव्या) हे प्राणाधार! होम से शुद्धिगुणयुक्त हुए आपकी प्ररेणा से वायु और चन्द्र हम लोगों के लिये सुखरूप ही सदा हों। (इन्द्रापूषणा वाजसातौ) हे प्राणपते! आपकी रक्षा से पूर्ण

आयु और बलयुक्त प्राणवाले हम लोग अपने अत्यन्त पुरुषार्थयुक्त युद्ध में स्थिर रहें, जिससे शत्रुओं के सम्मुख हम निर्बल कभी न हों। (इन्द्रासोमा सुविताय शं योः) 'प्राणपानौ वा इन्द्राग्नी' इत्यादि शतपथब्राह्मणादि के प्रमाण देख लेना। हे महाराज! आप के प्रबन्ध से राजा और प्रजा परस्पर विद्यादि सत्यगुणयुक्त होके अपने ऐश्वर्य का उत्पादन करें। तथा आपकी कृपा से परस्पर प्रीतियुक्त हो [कर] अत्यन्त सुखलाभों को प्राप्त हों। आप हम पुत्र लोगों को सुखी देखके अत्यन्त प्रसन्न हों, और हम भी प्रसन्नता से आप और जो आपकी सत्य आज्ञा उसमें ही तत्पर हों।।२३।।

स्तुति-विषयः

प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम बिभृतं गुहा सत्।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पिताऽसत् ॥२४॥

—यजुः० ३२। ९

व्याख्यान—[(प्र तद्वोचेदमृत०)] हे वेदादिशास्त्र और विद्वानों के प्रतिपादन करने योग्य! जो अमृत (मरणादि-दोषरहित) मुक्तों का (धाम) निवासस्थान सर्वगत सब का धारण और पोषण करनेवाला, सब की बुद्धियों का साक्षी ब्रह्म है, उस आपका उपदेश तथा धारण जो विद्वान् जानता है, वह 'गन्धर्व' कहाता है। (गच्छतीति गं=ब्रह्म, तद्धरतीति स गन्धर्वः) सर्वगत ब्रह्म को जो धारण करनेवाला, उसका नाम गन्धर्व है [(त्रीणि पदानि०)] तथा परमात्मा के तीन पद हैं—जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करने का सामर्थ्य, [इन] को तथा ईश्वर को जो स्वहृदय में जानता है, वह पिता का भी पिता है अर्थात् विद्वानों में भी विद्वान् है।।२४।।

प्रार्थना-विषयः

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः
शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ
शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥२५॥ —यजुः० ३६। १७

व्याख्यान—हे सर्वदुःखो की शान्ति करनेवाले! [(द्यौः शान्तिः०)] सब लोकों के ऊपर जो आकाश सो सर्वदा हम लोगों के लिए शान्त (निरुपद्रव) सुखकारक ही रहे। अन्तरिक्ष=मध्यस्थ लोक और उसमें स्थित वायु आदि पदार्थ, पृथिवी, पृथिवीस्थ पदार्थ जल जलस्थ पदार्थ, ओषधि तत्रस्थगुण, वनस्पति तत्रस्थ

पदार्थ, (विश्वे देवाः) जगत् के सब विद्वान् तथा विश्वद्योतक वेदमन्त्र इन्द्रिय सूर्यादि उनकी किरण तत्रस्थ गुण, ब्रह्म=परमात्मा तथा वेदशास्त्र, स्थूल और सूक्ष्म चराचर जगत्, ये सब पदार्थ हमारे लिए हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन्! आपकी कृपा से शान्त (निरुपद्रव) सदानुकूल और सुखदायक हों। [(सा मा शान्तिरेधि)] मुझको भी वह शान्ति प्राप्त हो। जिससे मैं भी आपकी कृपा से शान्त, दुष्ट-क्रोधादि उपद्रवरहित होऊँ, तथा सब संसारस्थ जीव भी दुष्ट क्रोधादि-उपद्रव-रहित ही हों ।।२५।।

स्तुति-विषयः

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च
नमः शिवाय च शिवतराय च॥२६॥ —यजुः० १६। ४१

व्याख्यान-हे कल्याणस्वरूप, कल्याणकर! [(नमः शंभवाय०)] आप 'शंभव' हो, मोक्षसुखस्वरूप और मोक्षसुख के करनेवाले हो, आपको नमस्कार है। आप 'मयोभव' हो, सांसारिक सुख के करनेवाले आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आप 'शङ्कर' हो, आप से ही जीवों का कल्याण होता है, अन्य से नहीं तथा 'मयस्कर' अर्थात् मन, इन्द्रिय, प्राण और आत्मा को सुख करनेवाले आप ही हो। आप 'शिव' मङ्गलमय हो। तथा आप 'शिवतर' अत्यन्त कल्याण-स्वरूप और कल्याणकारक हो। इससे आप को हम लोग वारम्बार नमस्कार करते हैं। नमो नम इति यज्ञः शतपथे श्रद्धा-भक्ति से जो जन ईश्वर को नमस्कारादि करता है, सो भी मङ्गलमय ही होता [है] ।।२६।।

प्रार्थना-विषयः

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥२७॥

—यजुः० २५। २१

व्याख्यान-हे देवश्वर! [हे] (देवाः) विद्वानो! [(भद्रं कर्णेभिः)] हम लोग कानों से सदैव भद्र=कल्याण को ही सुनें, अकल्याण की बात भी हम कभी न सुनें। हे यजनीयेश्वर! हे यज्ञकर्त्तारः! [(भद्रं पश्येमा०)] हम आँखों के कल्याण (मङ्गल सुख) को ही सदा देखें। हे जगदीश्वर! हे जनो! [(स्थिरैरङ्गैः०)] हमारे सब अङ्ग उपाङ्ग (श्रोत्रादि इन्द्रिय तथा सेनादि उपाङ्ग) स्थिर (दृढ़) सदा रहें, जिससे हम लोग

स्थिरता से आपकी स्तुति और आप की आज्ञा का अनुष्ठान सदा करें। [(व्यशेमहि०)] जिससे हम लोग आत्मा शरीर तथा इन्द्रिय और विद्वानों के हितकारक आयु को विविध सुखपूर्वक प्राप्त हों, अर्थात् सदा सुख में ही रहें।।२७।।

स्तुति-विषयः

ब्रह्म॑ जज्ञानं प्र॑थमं पु॒रस्ता॒द्वि सी॑म॒तः सु॒रुचो॑ वे॒नऽ आ॑वः।
स बु॒ध्न्या॒ऽ उप॒माऽ अ॑स्य वि॒ष्ठाः स॒तश्च॒ योनि॒मस॑तश्च॒ विवः॑ ॥२८॥

—यजुः० १३। ३

व्याख्यान—हे महीय परमेश्वर! [(ब्रह्म)] आप बड़ों से भी बड़े हो। आप से बड़ा वा [आपके] तुल्य कोई नहीं है। (जज्ञानम्) सब जगत् में व्यापक (प्रादुर्भूत) हो। [(प्रथमम्)] सब जगत् के प्रथम (अदिकारण) आप ही हो। सूर्यादि लोक (सीमतः) सीमा से युक्त (मर्यादा-सहित) (सुरुचः) आप से प्रकाशित हैं, (पुरस्तात्) इनका पूर्व रचके आप ही धारण कर रहे हो। (वि आवः) इन सब लोकों को विविध नियमों से पृथक्-पृथक् यथायोग्य वर्त्ता रहे हो। (वेनः) आपके आनन्दस्वरूप होने से ऐसा कोई जन संसार में नहीं है, जो आपकी कामना न करे, किन्तु सब ही आपको मिला चाहते हैं। तथा आप अनन्त विद्यायुक्त हो। सब रीति से (आ) समन्तात् रक्षक आप ही हो। सो ही परमात्मा (बुध्न्याः) अन्तरिक्षान्तर्गत दिशादि पदार्थों को (विवः) विवृत=विभक्त करता हैं। वे अन्तरिक्षादि (उपमा) सब व्यवहारों में उपयुक्त होते हैं, और [(विष्ठाः)] वे इस विविध जगत् के निवासस्थान हैं। [(सतश्च०)] 'सत' विद्यामान स्थूल जगत् 'असत्' अविद्यमान [अव्यक्त] चक्षुरादि इन्द्रियों से अगोचर इस द्विविध जगत् की 'योनि' आदिकारण आपको ही वेदशास्त्र और विद्वान् लोग कहते हैं। इससे इस जगत् के माता-पिता आप ही हैं। [आप ही] हम लोगों के भजनीय इष्ट देव हो।।२८।।

प्रार्थना-विषयः

सु॒मि॒त्रिया॒ न॒ऽ आप॒ऽ ओष॑धयः सन्तु दुर्मित्रि॒यास्तस्मै॑ सन्तु
यो॒ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं च॑ व॒यं द्वि॒ष्मः॥२९॥ —यजुः० ३६। २३

व्याख्यान—हे सर्वमित्रसम्पादक! ([आपः)] आप की कृपा से प्राण और जल तथा विद्या और ओषधि (सुमित्रियाः०) सुखदायक हम लोगों के लिए सदा हों,

कभी प्रतिकूल न हों। और जो हम से द्वेष अप्रीति-शत्रुता करता है, तथा जिस दुष्ट से हम द्वेष करते हैं, हे न्यायकारिन्! उसके लिए (दुर्मित्रियाः) पूर्वोक्त प्राणादि प्रतिकूल, दुःखकारक ही हों। अर्थात् जो अधर्म करे, उसको आपके रचे जगत् पदार्थ दुःखदायक ही हों। जिससे वह हमको दुःख न दे सके। पुनः हम लोग सदा सुखी ही रहें ।।२९।।

प्रार्थनाविषयः

यऽ इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः।
सऽ आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ२ऽआ विवेश॥ ३०॥

—यजुः० १७। १७

व्याख्यान—(होता) उत्पत्ति-समय में देने और प्रलय-समय में सब को लेनेवाला परमात्मा ही है। (ऋषिः) सर्वज्ञ [(इमा०)] इन सब लोक-लोकान्तर भुवनों का अपने स्वसामर्थ्य=कारण में होम=प्रलय करके (न्यसीदत्) नित्य अवस्थित रहता है। सो ही हमारा पिता है। फिर जब (द्रविणम्) द्रव्यरूप जगत् को [(इच्छमानः)] स्वेच्छा से उत्पन्न किया चाहता है, उस (आशिषा) सामर्थ्य से यथायोग्य विविध जगत् को सहजस्वभाव से रच देता है। इस चराचर (प्रथमच्छत्) विस्तीर्ण जगत को रचके अनन्तस्वरूप आच्छादित किया है। और अन्तर्यामी साक्षीस्वरूप [उसमें] प्रविष्ट हो रहा है, अर्थात् बाहर और भीतर परिपूर्ण हो रहा है। वही हमारा निश्चित पिता है। उसकी सेवा छोड़के जो मनुष्य अन्य पाषाणादि मूर्त्ति की सेवा करता है, वह कृतघ्नत्वादि महादोषयुक्त होके सदैव दुःख भागी होता है। और जो मनुष्य परमदयामय पिता की आज्ञा में रहता है, वह सर्वानन्द का सदैव भोग करता है ।।३०।।

स्तुति-विषयः

इषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व
क्षत्राय पिन्वस्व द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व ।
धर्मासि सुधर्मामेन्यस्मे नृम्णानि धारय
ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय ॥३१॥ —यजुः० ३८। १४

व्याख्यान—हे सर्वसौख्यप्रदेश्वर! हमको (इषे०) उत्तमान्न के लिए पुष्ट कर, अन्न के अपचन के रोगों से बचा। तथा विना अन्न के दुःखी हम लोग कभी न हों। हे महाबल! (ऊर्जे०) अत्यन्त पराक्रम के लिए हमको पुष्ट कर। हे वेदात्पादक!

(ब्रह्मणे॰) सत्य वेदविद्या के लिए बुद्ध्यादि बल से सदैव हमको पुष्ट और बलयुक्त कर। हे महाराजाधिराज परब्रह्मन्! (क्षत्राय) अखण्ड चक्रवर्ती राज्य के लिए शौर्य, धैर्य, नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुणयुक्त से कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्ट कर। अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों, तथा हम लोग पराधीन कभी न हों। हे स्वर्गपृथिवीश! (द्यावापृथिवीभ्याम्॰) स्वर्ग=परमोत्कृष्ट मोक्षसुख पृथिवी=संसारसुख इन दोनों के लिए हमको समर्थ कर। [(धर्मा॰)] हे सुष्ठुधर्मशील! तुम धर्मकारी हो, तथा धर्मस्वरूप ही हो, हम लोगों को भी कृपा से धर्मात्मा कर। (अमेनि) तुम निर्वैर हो, हमको भी निर्वैर कर। तथा कृपादृष्टि से (अस्मे)=अस्मभयम्=हमारे लिए (नृम्णानि) विद्या, पुरुषार्थ, हस्ती, अश्व, सुवर्ण, हीरादि रत्न, उत्कृष्ट राज्य, उत्तम पुरुष और प्रीत्यादि पदार्थों को धारण कर। जिससे हम लोग किसी पदार्थ के विना दुःखी न हों। [(ब्रह्म धारय॰)] हे सर्वाधिपते! [ब्रह्म=] ब्राह्मण=पूर्णविद्यादि सद्गुणयुक्त क्षत्र=बुद्धि, विद्या तथा शौर्यादिगुणयुक्त, विश=अनेकविद्योद्यम बुद्धि, विद्या धन और धान्यादि वस्तुयुक्त, तथा शूद्रादि भी सेवादिगुणयुक्त, ये सब स्वदेशभक्त उत्तम हमारे राज्य में हों। इन सब का धारण आप ही करो। जिससे अखण्ड ऐश्वर्य हमारा आपकी कृपा से सदा बना रहे ।।३१।।

स्तुति-विषयः

किꣳस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत् ।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ।।३२।।

—यजुः० १७। १८

व्याख्यान– प्रश्नोत्तरविद्या–[प्रश्न–(किंस्विदासी॰)] इस संसार का अधिष्ठान क्या है? कारण तथा उत्पादक कौन है? किस प्रकार से है? तथा रचना करनेवाले ईश्वर का अधिष्ठानादि क्या है? तथा निमित्तकारण और साधन जगत् वा ईश्वर के क्या हैं? (उत्तर)–(यतः॰) जिसका विश्व=जगत् कर्म किया हुआ है, उस विश्वकर्मा परमात्मा ने अनन्त स्वसामर्थ्य से इस जगत् को रचा है। वही इस सब जगत् का अधिष्ठान निमित्त और साधनादि है। उस ने अपने अनन्त स्वसामर्थ्य से इस सब जीवादि जगत् को यथायोग्य रचा और भूमि से लेके स्वर्गपर्यन्त रचके स्वमहिमा से (और्णोत्) आच्छादित कर रक्खा है। परमात्मा का अधिष्ठानादि परमात्मा ही है, अन्य

कोई नहीं, सबका उत्पादन, रक्षण, धारणादि वही करता है, तथा आनन्दमय है। वह ईश्वर कैसा है? कि (विश्वचक्षाः) सब संसार का द्रष्टा है। उसको छोड़के अन्य का आश्रय जो करता है, वह दुःखसागर में क्यों न डूबेगा? ॥३२॥

प्रार्थना-विषयः

तनूपाऽअग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दाऽअग्नेऽस्यायुर्मे देहि।
वर्चोदाऽअग्नेऽसि वर्चो मे देहि।
अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्मऽआपृण ॥३३॥ —यजुः० ३। १७

व्याख्यान—[(तनूपा अग्ने०)] हे सर्वरक्षकेश्वराग्ने! तू हमारे शरीर का रक्षक है। सो शरीर को कृपा से पालन कर। [(आयुर्दा०)] हे महावैद्य! आप आयु (उम्र) बढ़ानेवाले तथा रक्षक हो, मुझ को सुखरूप उत्तमायु दीजिए। [(वर्चोदा०)] हे अनन्तविद्यातेजः! आप 'वर्चः'=विद्यादि तेज=प्रकाश अर्थात् यथार्थविज्ञान देनेवाले हो, मुझको सर्वोकृष्ट विद्यादि तेज देओ। पूर्वोक्त शरीरादि की रक्षा से हमको सदा आनन्द में रक्खो। [(यन्मे तन्वा०)] और जो-जो कुछ भी शरीरादि में 'ऊनम्'=न्यून हो, उस-उस को कृपादृष्टि से सुख और ऐश्वर्य के साथ सब प्रकार से आप पूर्ण करो। किसी आनन्द वा श्रेष्ठ पदार्थ की न्यूनता हमको न रहे। आप के पुत्र हम लोग जब पूर्णानन्द में रहेंगे, तभी आप पिता की शोभा है। क्योंकि लड़के लोग छोटी वा बड़ी चीज, अथवा सुख पिता-माता को छोड़ किससे माँगे? सो आप सर्वशक्तिमान् हमारे पिता सब ऐश्वर्य तथा सुख देनेवालों में पूर्ण हो ॥३३॥

स्तुति-विषयः

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
स बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देवऽएकः ॥३४॥

—यजुः० १७। १९

व्याख्यान—[(विश्वतश्चक्षुः०)] विश्व=सब जगत् में जिसका चक्षु=दृष्टि है, जिससे अदृष्ट कोई वस्तु नहीं है, तथा जिसके सर्वत्र मुख, बाहु, पग अन्य श्रोत्रादि हैं, अर्थात् सर्वदृक्, सर्ववक्ता, सर्वधारक और सर्वगत ईश्वर व्यापक है। उसी से जो डरेगा वही धर्मात्मा होगा, अन्यथा कभी नहीं। [(द्यावभूमी०)] वही विश्वकर्मा परमात्मा एक ही अद्वितीय है, पृथिवी से लेके स्वर्गपर्यन्त जगत् का कर्त्ता है, [(संबाहुभ्याम्)]

जिस-जिस ने जैसा पाप वा पुण्य किया है, उस-उस को न्यायकारी, दयालु जगत-पिता पक्षपात छोड़के अनन्तबल और पराक्रम इन दोनों बाहुओं से सम्यक् (पतत्रैः) प्राप्त होनेवाले सुख-दुःख फलदान से सब जीवों [को] (धमति) धमन=कम्पन यथायोग्य जन्ममरणादि को प्राप्त करा रहा है। उसी निराकार, अज, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयामय, ईश्वर से अन्य को कभी न मानना चाहिए। वही याचनीय, पूजनीय, हमारा प्रभु और स्वामी और इष्टदेव है, उसी से सुख हमको होगा, अन्य से कभी नहीं ।।३४।।

स्तुति-विषयः

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याꣳ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः।
नर्य प्रजां मे पाहि शꣳस्य पशून्मे पाह्यथर्य पितुम्मे पाहि ।।३५।।

—यजुः० ३। ३७

व्याख्यान—हे सर्वमङ्गलकारकेश्वर! आप (भूः) सदा वर्त्तमान हो। (भुवः) वायु आदि पदार्थों के रचनेवाले (स्वः) सुखरूप लोक के रचनेवाले हो। हमको तीन लोक का सुख दीजिए। हे सर्वाध्यक्ष! आप कृपा करो जिससे कि मैं [(सुप्रजाः०)] पुत्र-पौत्रादि उत्तम गुणवाली प्रजा से श्रेष्ठ प्रजावाला होऊँ। [(सुवीरः वीरैः)] सर्वोतकृष्ट वीर योद्धाओं से सुवीरः=युद्ध में सदा विजयी होऊँ। हे महापुष्टिप्रद! आपके अनुग्रह से [(सुपोषः पोषैः)] अत्यन्त विद्यादि तथा सोम ओषधि, सुवर्णादि और नैरोग्यादि से सर्वपुष्टियुक्त होऊँ। हे (नर्य) नरों के हितकारक! [(प्रजाम०)] मेरी प्रजा की रक्षा आप करो। हे (शंस्य) स्तुति करने योग्य ईश्वर! [(पशून्०) मेरे] हस्त्यश्वादि पशुओं का आप पालन करो। हे (अथर्य) व्यापक ईश्वर! (पितुम्०) मेरे अन्न की रक्षा करो। दयानिधे! हम लोगों को सब उत्तम पदार्थों से परिपूर्ण और सब दिन आप आनन्द में रक्खो ।।३५।।

स्तुति-विषयः

किꣳस्विद्वनं कऽ उ स वृक्षऽ आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ।।३६।।

—यजुः० १७। २०

व्याख्यान—प्रश्नोत्तरविद्या-(प्रश्न) [(किंस्विद्व वनं क उ स .....

निष्टतक्षुः)] वन और वृक्ष किसको कहते हैं? (उत्तर) जिस सामर्थ्य से विश्वकर्मा ईश्वर ने जैसे तक्षा=बढ़ई अनेकविध रचना से अनेक पदार्थ रचता है, वैसे ही स्वर्ग=सुखविशेष और भूमि=मध्य सुखवाला लोक तथा नरक=दुःखविशेष और [इन] सब लोकों को रचा है, उसी को 'वन और वृक्ष' कहते हैं। हे (मनीषिणः) विद्वानो! [(यदध्यतिष्ठत्॰)] जो सब भुवनों को धारण करके सब जगत् में और सब के ऊपर विराजमान हो रहा है, उसके विषय में प्रश्न तथा उसका निश्चय तुम लोग करो। (मनसा॰) उसी के विज्ञान से जीवों का कल्याण होता है, अन्यथा नहीं ।।३६।।

प्रार्थना-विषयः

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शत-मदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।।३७।। –यजुः० ३६। २४

व्याख्यान–[(तत्)] वह ब्रह्म (चक्षुः) सर्वदृक् चेतन है [(देवहितम्)] तथा देव अर्थात् विद्वानों के लिए वा मन आदि इन्द्रियों के लिए हितकारक मोक्षादि सुख का दाता है। (पुरस्तात्) सब का आदि प्रथम कारण वही है। (शुक्रम्) सब का करनेवाला, किंवा शुद्धस्वरूप है। (उच्चरत्) प्रलय के ऊर्ध्व वही रहता है। [(पश्येम ..... शतात्)] उसी की कृपा से हम लोग १०० वर्ष तक देखें, जीवें सुनें कहें, किसी के पराधीन न हों। अर्थात् ब्रह्मज्ञान, बुद्धि और पराक्रमसहित इन्द्रिय तथा शरीर सब स्वस्थ रहें। ऐसी कृपा आप करें कि मेरा कि कोई अङ्ग मेरा निर्बल=क्षीण तथा रोगयुक्त न हो, तथा सौ वर्ष से अधिक भी। आप कृपा करें कि सौ वर्ष के उपरान्त भी हम देखें, जीवें, सुनें, कहें और स्वाधीन ही रहें ।।३७।।

प्रार्थना-विषयः

या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा । शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ।।३८।।

–यजुः० १७। २१

व्याख्यान–हे सर्वविधायक विश्वकर्मन्नीश्वर ! [(या ते ..... उत्तेमा)] जो तुम्हारे स्वरचित उत्तम, मध्यम, निकृष्ट त्रिविध धाम=लोक हैं, [(शिक्षा सखिभ्यः)] उन सब लोकों की शिक्षा हम आपके सखाओं को करो। यथार्थ विद्या

होने से सब लोकों में सदा सुखी ही रहें। तथा इन लोकों के (हविषि) दान और ग्रहण व्यवहार में हम लोग चतुर हों। हे (स्वधावः) स्वसामर्थ्यादि धारण करनेवाले। [(तन्वं वृधानः)] हमारे शरीरादि पदार्थों को आप ही बढ़ानेवाले हैं। (यजस्व) हमारे लिए विद्वानों का सत्कार, सब सज्जनों के सुखादि की सगति, विद्यादि गुणों का दान आप स्वयं करो। आप अपनी उदारता से ही हम को सब सुख दीजिए। किञ्च हम लोग तो आप के प्रसन्न करने में कुछ भी समर्थ नहीं हैं। सर्वथा आप के अनुकूल वर्त्तमान नहीं कर सकते, परन्तु आप तो अधमोद्धारक हैं, इससे हमको स्वकृपा कटाक्ष से सुखी करें ।।३८।।

प्रार्थना-विषयः

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे
तद् दधातु। शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ।।३९।।

—यजुः० ३६। २।।

व्याख्यान—हे सर्वसन्धायकेश्वर! [(यन्मे छिद्रं ..... दधातु)] मेरे चक्षु (नेत्र), हृदय (प्राणात्मा), मन, बुद्धि, विज्ञान, विद्या और सब इन्द्रिय—इनके छिद्र=निर्बलता, राग-द्वेष, चाञ्चल्य यद्वा मन्दत्वादि विकार इनका निवारण=निर्दोष करके सत्यधर्मादि में धारण आप ही करो, क्योंकि आप 'बृहस्पति=सबसे बड़े हो। सो अपनी बड़ाई की ओर देखके इस बड़े काम को आप अवश्य करें। जिस से हम लोग आप और आपकी आज्ञा के सेवन में यथार्थ तत्पर हों। मेरे सब छिद्रों को आप ही ढाँकें [(शं नो..... यस्पतिः)] आप सब भुवनों के पति हैं, इसलिए आप से वारम्बार प्रार्थना हम लोग करते हैं कि सब दिन हम लोगों पर कृपादृष्टि से कल्याणकारक हों। हे परमात्मन्! आपके सिवाय हमारा कल्याण-कारक कोई नहीं है। हमको आप [ही] का सब प्रकार का भरोसा है, सो आप ही पूरी करेंगे ।।३९।।

स्तुति-विषयः

विश्वकर्मा विमनाऽ आद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक्।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऽऋषीन् परऽ एकमाहुः ।।४०।।

—यजुः० १७। २६

व्याख्यान—हे सर्वज्ञ, सर्वरचक ईश्वर! आप (विश्वकर्मा) विविध

जगतदुत्पादक हो। तथा (विमनाः) विविध (अनन्त) विज्ञानवाले हो। तथा (आद्विहाया) सर्वव्यापक और आकाशवत् निर्विकार, अक्षोभ्य, सर्वाधिकरण हैं। वही सब जगत् का (धाता) धारणकर्त्ता है। (विधाता) विविध विचित्र जगत् का उत्पादक है। तथा (परम उत) सर्वोत्कृष्ट है। (सन्दृक्) यथावत् सबके पाप और पुण्यों को देखनेवाले है। (तेषामिष्टानि) जो मनुष्य उसी की भक्ति, उसी में विश्वास, और आपका सत्कार (पूजा) करते हैं, उसको छोड़के अन्य किसी को लेशमात्र भी नहीं मानते, उन पुरुषों को ही सब इष्ट सुख मिलते हैं, औरों को नहीं। वह ईश्वर अपने भक्तों को सुख में ही रखता हैं, और वे भक्त भी [(समिषा)] सम्यक् स्वेच्छापूर्वक (मदन्ति) परमानन्द में ही सदा रहते हैं, कभी दुःख को प्राप्त नहीं होते। [(पर एकमाहुः)] वह परमात्मा एक अद्वितीय हैं। जिस परमात्मा के सामर्थ्य में (सप्त ऋषीन्) अर्थात् पञ्च प्राण, अन्तःकरण और जीव ये सब प्रलय-विषयक कारणभूत ही रहते हैं, वही जगत् की उत्पति स्थिति और प्रलय में निर्विकार आनन्दस्वरूप ही रहता है। उसी की उपासना करने से हम लोगों को सदा सुख रहता है ।।४०।।

प्रार्थना-विषयः

चतुःस्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सुप्रथाः स नो विश्वायुः सुप्रथाः
स नः सर्वायुः सुप्रथाः। अप द्वेषोऽ अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम ।।४१।।

—यजुः० ३८। २०

व्याख्यान—हे महावैद्य! सर्वरोगनाशकेश्वर! [(चतुः स्रक्तिः . . . . . ऋतस्य)] चार कोणेवाली नाभि (मर्मस्थान) ऋत की भरी, नैरोग्य और विज्ञान का घर (सप्रथाः) विस्तीर्ण सुखयुक्त आपकी कृपा से हो। तथा आपकी कृपा से (विश्वायुः) पूर्ण आयु हो। [(स नः.....सप्रथाः)] आप जैसे सर्वसामर्थ्य से विस्तीर्ण हो, वैसे ही विस्तृत सुखयुक्त विस्तारसाहित सर्वायु हमको दीजिए। हे शान्तस्वरूप! हम (अपद्वेषः) द्वेषरहित आप की कृपा से, तथा (अपह्वरः) चलन-(कम्पन) रहित हों। [(अन्य व्रतस्य)] आपकी आज्ञा और आप से भिन्न को लेशमात्र भी ईश्वर न मानें, यही हमारा व्रत है। इससे अन्य व्रत को कभी न माने। किन्तु आप को (सश्चिम) सदा सेवें। यही हमारा परम निश्चय है। इस परम निश्चय की रक्षा आप ही कृपा से करें ।।४१।।

स्तुति-विषयः

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधाऽएकऽएव तꣳ सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥४२॥

—यजुः० १७। २७

व्याख्यान—हे मनुष्यो! [(यो नः)] जो अपना (पिता) नित्य पालन करनेवाला (जनिता) जनक, उत्पादक, (विधाता) सब मोक्ष सुखादि कामों का विधायक (सिद्धिकर्त्ता) (विश्वा) सब [(भुवनानि)] भुवन (लोकलोकान्तर) (धामानि) अर्थात् स्थिति के स्थानों को (वेद) यथावत् जाननेवाला, सब जातमात्र भूतों में विद्यमान है। जो (देवानां नामधा) दिव्य सूर्यादि लोक तथा इन्द्रियादि और विद्वानों का नाम (व्यवस्थादि) करनेवाला (एक एव) अद्धितीय वही है, अन्य कोई नहीं। वही स्वामी और पितादि अपने लोगों का है, इसमें शंका नहीं रखनी। [(तं सम्प्रश्नं.....अन्या)] तथा उसी परमात्मा के सम्यक् प्रश्नोत्तर करने में विद्वान् वेदादि शास्त्र और प्राणीमात्र प्राप्त हो रहे हैं। क्योंकि सब पुरुषार्थ यही है कि परमात्मा, उसकी आज्ञा और उसके रचे जगत् का यथार्थ से निश्चय (ज्ञान) करना। उस से ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चार प्रकार के पुरुषार्थ के फलों की सिद्धि होती है, अन्यथा नहीं। इस हेतु से तन, मन, धन और आत्मा प्रयत्नपूर्वक ईश्वर के सहाय से सब मनुष्यों को धर्मादि पदार्थों की यथावत् सिद्धि अवश्य करनी चाहिए ॥४२॥

प्रार्थना-विषयः

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥४३॥

—यजुः० ३४। १

व्याख्यान—हे धर्म्य निरुपद्रव परमात्मन्! "मे मनः" मेरा मन सदा "शिवसंकल्पम्" धर्मकल्याण-सङ्कल्पकारी ही आपकी कृपा से हो, कभी अधर्मकारी न हो। वह मन कैसा है कि "यज्जाग्रतो..... तथैवैति" जागते हुए (तथा सोते हुए) पुरुष का दूर-दूर आता-जाता है, दूर जाने का जिसका स्वभाव ह है। "ज्योतिषां ज्योतिः" अग्नि, सूर्यादि, श्रोत्रादि इन्द्रिय इन ज्योति (प्रकाशकों) का भी ज्योति प्रकाशक है। अर्थात् मन के विना किसी पदार्थ का प्रकाश कभी नहीं होता। वह एक

बड़ा चञ्चल, वेगवाला मन आप की कृपा से ही स्थिर, शुद्ध, धर्मात्मा, विद्यायुक्त हो सकता है "दैवम्" देव (आत्मा का) मुख्यसाधक भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानकाल का ज्ञाता है। वह आपके वश में ही है। उसको आप हमारे वश में यथावत् करें, जिससे हम कुकर्म में कभी न फँसें। सदैव विद्या, धर्म और आपकी सेवा में ही रहें ।।४३।।

स्तुति-विषयः

न तं विदाथ यऽइमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृपऽउक्थशासश्चरन्ति।।४४।।

—यजुः० १७। ३१

व्याख्यान—हे जीवो! "न तं..... जजान" जो परमात्मा इन सब भुवनों को बनानेवाला विश्वकर्मा है, उसको तुम लोग नहीं जानते हो, इसी हेतु से तुम "नीहारेण" अत्यन्त अविद्या से "प्रावृता जलप्या" आवृत, मिथ्यावाद, नास्तिकत्व, बकवाद करते हो। इस से दुःख ही तुमको मिलेगा, सुख नहीं। तुम लोग "असुतृपः" केवल स्वार्थसाधक, प्राणपोषण-मात्र में ही प्रवृत्त हो रहे हो "उक्थशासश्चरन्ति" केवल विषय-भोगों के लिए ही अवैदिक कर्म करने में प्रवृत्त हो रहे हो और जिसने ये सब भुवन रचे है, उस सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी परब्रह्म से उलटे चलते हो। अत एव उसको तुम नहीं जानते।

प्रश्न-वह ब्रह्म और हम जीवात्मा लोग-ये दोनों एक हैं वा नहीं?

उत्तर-"यद्युष्माकमन्तरं बभूव" ब्रह्म और जीव की एकता वेद और युक्ति से सिद्ध कभी नहीं हो सकती, क्योंकि जीव ब्रह्म का पूर्व से ही भेद है। जीव अविद्या आदि दोषयुक्त है, ब्रह्म अविद्यादि दोषयुक्त कभी नहीं होता, इससे यह निश्चित है कि जीव और ब्रह्म एक न थे, न होंगे और न ही हैं, किंच व्याप्य व्यापक, आधाराधेय, (सेव्यसेवकादि) 'जन्यजनकादि' सम्बन्ध तो जीवादि के साथ ब्रह्म का है, इससे जीव ब्रह्म की एकता मानना किसी मनुष्य को योग्य नहीं।।४४।।

प्रार्थना-विषयः

भगऽएव भगवाँऽअस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्वऽइज्जोहवीति स नो भग पुरऽएता भवेह।।४५।।

—यजुः ३४।३८

व्याख्या–हे सर्वाधिपते ! महाराजेश्वर ! आप "भगः" परमैश्वर्यस्वरूप होने से भगवान् हो। हे "देवाः" विद्वानो ! "तेन" (भगवतेश्वरेण प्रसन्नेन तत्सहायनैव) उस भगवान्-प्रसन्न ईश्वर के सहाय से ही "वयं.....स्याम" हम लोग परमैश्वर्ययुक्त हों। हे "भग" परमेश्वर ! सर्व संसार "तं त्वा" उन आपको ही "जोहवीति" ग्रहण करने को अत्यन्त इच्छा करता है, क्योंकि कौन ऐसा भाग्यहीन मनुष्य है जो आपको प्राप्त होने की इच्छा न करे ?, सो "सः नो.....भवेह" सो आप हमको प्रथम से प्राप्त हों। फिर कभी हम से आप और ऐश्वर्य अलग न हो। आप अपनी कृपा से इसी जन्म में परमेश्वर्य का यथावत् भोग हम लोगों को करावें और आपकी सेवा में हम नित्य तत्पर रहें।।४५।।

प्रार्थना-विषयः

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे
निधीनां त्वां निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम्।
आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ।।४६।। –यजुः० २३।११

व्याख्यान–हे समूहाधिपते ! "गणानां..... हवामहे" आप मेरे गण-सब समूहों के पति होने से आपको 'गणपति' नाम से ग्रहण करता हूँ तथा "प्रियाणां....हवामहे" मेरे प्रिय कर्मकारी पदार्थ और जनों के "पति" पालक भी आप ही हैं, इससे आपको 'प्रियपति' मैं अवश्य जानूँ, "निधीनां त्वा निधिपतिम्" एवं मेरी सब निधियों के पति होने से आप को मैं निश्चित निधिपति जानूँ। हे "वसो" सब जगत् जिस सामर्थ्य से उत्पन्न हुआ, उस "गर्भ धम्" 'गर्भ' स्वसामर्थ्य का धारण और पोषण करनेवाला आपको ही मैं जानूँ। सो गर्भ सबका कारण आपका सामर्थ्य है, यही सब जगत् का धारण और पोषण करता है। यह जीवादि जगत् तो जन्मता और मरता है, परन्तु "त्वमजासि" आप सदैव अजन्मा और अमृतस्वरूप हैं। आपकी कृपा से अधर्म, अविद्या, दुष्टभावादि को "अजानि" दूर फेकूँ तथा हम सब लोग आपकी ही "हवामहे" अत्यन्त स्पर्धा (प्राप्ति की इच्छा) करते हैं, सो आप अब शीघ्र हमको प्राप्त होओ, जो प्राप्त होने में आप थोड़ा विलम्ब करेंगे तो हमारा कुछ भी कभी कहीं ठिकाना न लगेगा।।४६।।

प्रार्थना-विषयः

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।

इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि।।४७।। —यजुः० १।५

व्याख्यान–"अग्ने....चरिष्यामि" हे सच्चिदानन्द, स्वप्रकाशरूप ईश्वराग्ने! ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आदि सत्यव्रतों का आचरण मैं करूँगा, "तत्....... .राध्यताम्" सो इस व्रत को आप कृपा [कर] के सम्यक् सिद्ध करें "इदं.....उपमि" तथा मैं अनृत–अनित्य देहादि पदार्थों से 'पृथक होके' इस यथार्थ सत्य जिसका कभी व्यभिचार विनाश नहीं होता, उस सत्याचरण, विद्यादि लक्षण धर्म को प्राप्त होता हूँ, इस मेरी इच्छा को आप पूरी करें, जिससे मैं सभ्य, विद्वान्, सत्याचरणी, आपकी भक्तियुक्त धर्मात्मा होऊँ।।४७।।

स्तुति–विषयः

यऽ आत्मदा बलदा यस्य विश्वऽ उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।४८।।

—यजुः० २५।१३

व्याख्यान–हे मनुष्यों! जो परमात्मा अपने लोगों को "आत्मदाः" आत्मा का देनेवाला तथा आत्मज्ञानादि का दाता है, जीवप्राणदाता तथा "बलदाः" त्रिविध बल–एक मानसविज्ञानबल, द्वितीय–इन्द्रियबल अर्थात् श्रोत्रादि की स्वस्थता, तेजोवृद्धि, तृतीय शरीरबल नाम नैरोग्य, महापुष्टि दृढ़ाङ्गता और वीर्यादिवृद्धि–इन तीन बल का जो दाता है, "यस्य विश्व उपासते" जिस की सब लोग उपासना करते है, "यस्य" जिसके "प्रशिषम्" अनुशासन (शिक्षा–मर्यादा) को यथावत् "देवाः" विद्वान् लोग मानते हैं, सब प्राणी–अप्राणी–जड़–चेतन, विद्वान् वा मूर्ख उस परमात्मा के नियमों को कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता, जैसे कि कान से सुनना, आंख से देखना उलटा कोई नहीं कर सकता है। जिसकी "छाया" आश्रय ही "अमृतम्" अमृत विज्ञानी लोगों का मोक्ष कहाता है तथा जिसकी 'अच्छाया' (अकृपा) दुष्ट जनों के लिये (मृत्यु) बारम्बार मरण और जन्मरूप महाक्लेशदायक है। हे सज्जन मित्रों ! "कस्मै .... विधेम" वही एक परमसुखदायक पिता है। आओ अपने सब जने मिलके प्रेम विश्वास और भक्ति करें। कभी उसको छोड़के अन्य को उपास्य न मानें। वह अपने को अत्यन्त सुख देगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं।।४८।।

स्तुति–विषयः

उपहूताऽ इह गावऽ उपहूताऽ अजावयः।
अथोऽअन्नस्य कीलालऽ उपहूतो गृहेषु नः।
क्षेमाय वः शान्त्यै प्र पद्ये शिवं शग्मं शंयोः शंयोः॥४९॥

–यजुः० ३।४३

व्याख्यान–हे पश्वादिपते! उत्तम महात्मन्! "उपहूता......अजावयः" आपकी ही कृपा से उत्तम–उत्तम गाय, भैस, घोड़े, हाथी, बकरी, भेड़ तथा उपलक्षण से अन्य सुखदायक सब पशु और "अथ अन्नस्य कीलालः" और अन्न, सर्वरोगनाशक ओषधियों का उत्कृष्ट रस "नः" हमारे घरों में नित्य स्थिर (प्राप्त) रख। जिससे किसी पदार्थ के विना हमको दुःख न हो। हे विद्वानो ! "वः" (युष्माकम्) तुम्हारे सङ्ग और ईश्वर की कृपा से "क्षेमाय" क्षेम कुशलता और "शान्त्यै" शान्ति तथा सर्वोपद्रव 'के' विनाश के लिए "शिवम्" मोक्षसुख और "शग्मम्" इस संसार–सुख को मै प्राप्त होऊँ। "शंयोः शंयोः" मोक्ष–सुख और प्रजा–सुख–इन दोनों की कामना करनेवाला जो मैं हूँ, उस मेरी उक्त उन दोनों कामनाओं को आप यथावत् शीघ्र पूरा कीजिए, आपका यही स्वभाव है कि अपने भक्तों की कामना अवश्य पूरी करना।।४९।।

स्तुति–विषयः

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥५०॥

–यजुः० २५।१८

व्याख्यान–हे सुख और मोक्ष की इच्छा करनेवाले जनो! "तम्" उस परमात्मा के ही "हूमहे" हम लोग प्राप्त होने के लिए अत्यन्त स्पर्धा करते हैं कि उसको हम कब मिलेंगे, क्योंकि वह "ईशानम्" सब जगत् का स्वामी है और ईषण (उत्पादन) करने की इच्छा करनेवाला है। "जगतस्तस्थुषपतिम्" दो प्रकार का जगत् है–चर और अचर–इन दोनों प्रकार के जगत् का पालन करनेवाला वही है, "धिञ्जिन्वम्" विज्ञानमय, विज्ञानप्रद और तृप्तिकारक ईश्वर से अन्य कोई नहीं है। उसको "अवसे" अपनी रक्षा के लिए हम स्पर्धा (इच्छा) से आह्वान करते हैं। जैसे वह ईश्वर "पूषा" हमारे लिए पोषणप्रद है, वैसे ही "वेदसाम्" धन और विज्ञानों की वृद्धि का "रक्षिता" रक्षक है तथा "स्वस्तये" निरुपद्रवता के लिए हमारा "पायुः" पालक वही है और

"अदब्ध" हिंसारहित है, इसलिए ईश्वर जो निराकार, सर्वानन्दप्रद है, हे मनुष्यों! उसको मत भूलो, बिना उसके कोई सुख का ठिकाना नहीं है।।४०।।

प्रार्थना-विषयः

मयीदमिन्द्रऽ इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्।

अस्माकꣳ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषः।।५१।। –यजुः० २।१०

व्याख्यान–हे "इन्द्र" परमैश्वर्यवन् ईश्वर! "मयि" मुझमें [(इन्द्रियम्)] विज्ञानादि शुद्ध इन्द्रिय "दधातु" धारण करो और "रायः" उत्तम धन को "मघवानः" परम धनवान् आप ["अस्मान्" हमारे लिये] "सचन्ताम्" सद्यः प्राप्त करो। हे सर्वकाम पूर्ण करनेवाले ईश्वर "अस्माकम्......सन्तु" आपकी कृपा से हमारी आशा सत्य ही होनी चाहिए, (पुनरुक्त अत्यन्त प्रेम और त्वरा द्योतनार्थ है) भगवन् ! हम लोगों की इच्छा आप शीघ्र ही सत्य कीजिए, इससे हमारी न्याययुक्त इच्छा के सिद्ध होने से हम लोग परमानन्द में सदा रहें।। ५१।।

स्तुति-विषय

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।

सनिं मेधामयासिषꣳ स्वाहा।।५२।। –यजुः० ३२।१३।।

व्याख्यान–हे सभापते! विद्यामय न्यायकारिन्! (सदसस्पतिम्) हमको सभासद् सभाप्रिय! सभा ही हमारा राजा न्यायकारी हो, ऐसी इच्छावाले आप हमको कीजिए। किसी एक मनुष्य को हम लोग राजा कभी न बनावें, किन्तु आप को ही हम लोग सभापति=सभाध्यक्ष=राजा मानें। "अद्भूतं प्रियम्" आप अद्भूत आश्चर्य, विचित्र शक्तिमय हैं तथा प्रियस्वरूप ही हैं। "इन्द्रस्य काम्यम्" इन्द्र जो जीव उसके कमनीय (कामना के योग्य) आप ही हैं। "सनिम्" सम्यक् भजनीय और सेव्य भी सब जीवों के आप ही हैं। "मेधाम्" विद्या, सत्यधर्मादि धारणावाली बुद्धि को हे भवगन्! मैं "अयासिषम्" मैं याचता हूँ, सो आप कृपा करके मुझको देओ। "स्वाहा" यही स्वकीय वाक् "आह" कहती है कि ईश्वर से भिन्न कोई जीवों को सेव्य नहीं है। ऐसी वेद में ईश्वराज्ञा है, सो सब मनुष्यों को अवश्य मानना योग्य है ।।५२।।

प्रार्थना-विषयः

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।

तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा।।५३।। –यजुः० ३२। १४

व्याख्यान–हे सर्वज्ञाग्ने! परमात्मन्! "यां मेधाम्" जिस विज्ञानवती, यथार्थ धारणावाली बुद्धि को "देवगणाः" देवसमूह (विद्वानों के वृन्द) "उपासते" धारण करते हैं तथा यथार्थ पदार्थविज्ञानवाले "पितरश्च" तथा यथार्थ पदार्थविज्ञान वाले पितर जिस बुद्धि के उपाश्रित होते हैं, (तया..... कुरु) उस बुद्धि के साथ इसी समय कृपा से मुझको मेधावी कर। "स्वाहा" इसको आप अनुग्रह और प्रीति से स्वीकार कीजिए, जिससे मेरी जड़ता सब दूर हो जाए ।।५३

प्रार्थना-विषयः

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा।। ५४।।

–यजुः० ३२। १५

व्याख्यान–हे सर्वोत्कृष्टेश्वर! आप "वरुणः" वर (वरणीय) आनन्दस्वरूप हो, स्वकृपा से मुझको "मेधाम्" सर्वविद्या-सम्पन्न बुद्धि दीजिए तथा "अग्निः" विज्ञानमय, विज्ञानप्रद "प्रजापतिः" सब संसार के अधिष्ठाता, पालक "इन्द्रः" परमैश्वर्यवान् "वायुः" विज्ञानवान्, अनन्तबल "धाता" तथा सब जगत् का धारण और पोषण करनेवाले आप मुझको "मेधाम्" मेधा (बुद्धि) दीजिए* ।।५४।।

प्रार्थना-विषयः

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा।।५५।।

–यजुः० ३२। १६

व्याख्यान-हे महाविद्य ! महाराज ! सर्वेश्वर ! "मे ब्रह्म" मेरा ब्रह्म (विद्वान) और "क्षत्रम्" राजा महाचतुर, न्यायकारी शूरवीर राजादि क्षत्रिय (उभे) ये दोनों आपकी अनन्त कृपा से यथावत् अनुकूल हों। "श्रियम्" सर्वोत्तम विद्यादिलक्षणयुक्त महाराज्यश्री को हम प्राप्त हों। हे "देवाः" विद्वानो! (उत्तमां श्रियम्) (दिव्य ईश्वर-गुण) परमकृपा आदि तथा उत्तम विद्यादि लक्षणसमन्वित श्री को मुझ में

* अनेक बार मांगना ईश्वर से अत्यन्त प्रीतिद्योतनार्थ और सद्यः दानार्थ है। बुद्धि से उत्तम पदार्थ कोई नहीं है। उसके होने से जीव को सब सुख होते हैं। इस हेतु से वारम्वार परमात्मा से बुद्धि की ही याचना करना श्रेष्ठ बात है।

(दधत्) अचलता से धारण कराओ, उसको मैं अत्यन्त प्रीति से स्वीकार करूँ और उस श्री को विद्यादि सद्गुण वा सर्वसंसार के हित के लिए तथा राज्यादि प्रबन्ध के लिए व्यय करूँ ।। ५५।।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुतविरजानन्द-
सरस्वतीस्वामिनां महाविदुषां शिष्येण
दयानन्दसरस्वतीस्वामिना
विरचित आर्याभिविनये
द्वितीयः प्रकाशः सम्पूर्णः।।